आचार्य समन्तभद्र कृत

रत्नकरण्डक श्रावकाचार

प्रकाशक

धर्मोदय परीक्षा बोर्ड

सागर (म. प्र.)

कृति : रत्नकरण्डक श्रावकाचार

रचयिता : आचार्य समन्तभद्र

संस्करण : प्रथम, फरवरी 2013

प्रतियाँ : 1100

मूल्य : 20 /-

प्राप्तिस्थान : **धर्मोदय परीक्षा बोर्ड**
बाहुबली कॉलोनी
सागर (म. प्र.)
94249-51771

मुद्रक : विकास आफसेट, भोपाल

सम्यग्दर्शनाधिकार

मंगलाचरण

नमः श्रीवर्द्धमानाय निर्धूतकलिलात्मने ।
सालोकानां त्रिलोकानां यद्विद्या दर्पणायते ॥ 1 ॥

अन्वयार्थ : (**निर्धूतकलिलात्मने**) जिनकी आत्मा ने कर्मरूप कलंक को नष्ट कर दिया है अर्थात् जो वीतराग हैं अथवा जिनकी आत्मा ने हितोपदेश देकर अन्य जीवों को कर्मकलंक से रहित किया है अर्थात् जो हितोपदेशी हैं और (**यद्विद्या**) जिनका केवलज्ञान (**सालोकानां त्रिलोकानाम्**) अलोक सहित तीनों लोकों के विषय में (**दर्पणायते**) दर्पण के समान आचरण करता है।[**तस्मै**] उन (**श्रीवर्द्धमानाय**) श्रीवर्द्धमान स्वामी को (**नमः**) नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ : जिनका केवलज्ञान अलोकाकाश सहित तीनों लोकों को दर्पण की तरह स्पष्ट जानता है, ऐसे परम वीतरागी श्रीवर्द्धमानस्वामी को नमस्कार करता हूँ।

उद्देश्य और धर्म का स्वरूप

देशयामि समीचीनं, धर्मं कर्मनिबर्हणं।
संसारदुःखतः सत्त्वान्, यो धरत्युत्तमे सुखे ॥ 2 ॥

अन्वयार्थ : [**अहम्**] मैं (**कर्मनिबर्हणम्**) कर्मों का विनाश करने वाले (**तं**) उस (**समीचीनम्**) श्रेष्ठ (**धर्मम्**) धर्म को (**देशयामि**) कहता हूँ (**यः**) जो (**सत्त्वान्**) जीवों को (**संसार दुःखतः**) संसार के दुःखों से [**उद्धृत्य**] निकालकर (**उत्तमे सुखे**) स्वर्ग-मोक्ष आदि के उत्तम सुख में (**धरति**) धारण कराता है/पहुँचा देता है।

भावार्थ : आचार्य समन्तभद्र ग्रन्थ के उद्देश्य को बताते हुए कहते हैं कि - मैं प्रस्तुत ग्रन्थ में कर्मों के नाशक, अबाधित और कल्याणकारी उस यथार्थपरक धर्म का प्रतिपादन करूँगा, जो समस्त प्राणियों को संसार के क्लेशों से मुक्त कर उत्तम सुखों को प्राप्त कराता है।

धर्म और संसार का मार्ग

सद्दृष्टिज्ञानवृत्तानि, धर्मं धर्मेश्वरा विदुः।
यदीयप्रत्यनीकानि, भवन्ति भवपद्धतिः॥ 3॥

अन्वयार्थ : (**धर्मेश्वराः**) धर्म के स्वामी जिनेन्द्रदेव [**तानि**] उन (**सद्दृष्टि ज्ञानवृत्तानि**) सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को (**धर्मम्**) धर्म (**विदुः**) कहते हैं। (**यदीयप्रत्यनीकानि**) जिनके विपरीत-मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र (**भव पद्धतिः**) संसार की सन्तति (**भवन्ति**) होते हैं।

भावार्थ : धर्म के स्वामी जिनेन्द्र देव कहते हैं कि - सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र धर्म है तथा मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्या-चारित्र अधर्म हैं, क्योंकि ये प्राणियों को सांसारिक दुःखों में फँसाते हैं।

सम्यग्दर्शन का स्वरूप

श्रद्धानं परमार्थाना-माप्तागम-तपोभृताम् ।
त्रिमूढापोढ-मष्टाङ्गं, सम्यग्दर्शन-मस्मयम्॥ 4॥

अन्वयार्थः (**परमार्थानाम्**) परमार्थभूत (**आप्तागमतपो-भृताम्**) देव, शास्त्र और गुरु का (**त्रिमूढापोढम्**) तीन मूढ़ताओं से रहित (**अष्टाङ्गम्**) आठ अंगों सहित और (**अस्मयम्**) आठ प्रकार-के मदों से रहित (**श्रद्धानम्**) श्रद्धान करना (**सम्यग्दर्शनम्**) सम्यग्दर्शन कहलाता है।

भावार्थ : सच्चे देव, शास्त्र और गुरु पर तीन मूढ़ताओं से रहित, सम्यक्त्व के आठ अंगों के साथ तथा आठ मदों से रहित ज्यों का त्यों अविचल श्रद्धान सम्यग्दर्शन है।

सच्चे देव का स्वरूप

आप्तेनोच्छिन्नदोषेण, सर्वज्ञेनागमेशिना ।
भवितव्यं नियोगेन, नान्यथा ह्याप्तता भवेत्।। 5॥

अन्वयार्थ : (**नियोगेन**) नियम से (**आप्तेन**) आप्त को (**उत्च्छिन्न-दोषेण**) दोषरहित -वीतराग (**सर्वज्ञेन**) सर्वज्ञ और (**आगमेशिना**) आगम का स्वामी-हितोपदेशी (**भवितव्यम्**) होना चाहिए (**हि**) क्योंकि (**अन्यथा**) अन्य प्रकार से (**आप्तता**) आप्तपना (**न भवेत्**) नहीं हो सकता।

भावार्थ : जिसने रागद्वेषादि दोषों का विनाश कर दिया है, जो सर्व चराचर जगत् का जानने वाला सर्वज्ञ है और वस्तु-स्वरूप के प्रतिपादक आगम का स्वामी अर्थात् मोक्षमार्ग का प्रणेता है, वही पुरुष नियम से सच्चा आप्त होने के योग्य है अन्यथा आप्तपना हो ही नहीं सकता अर्थात् जो वीतरागी, सर्वज्ञ और हितोपदेशी नहीं है, ऐसा पुरुष कभी सच्चा देव नहीं हो सकता है।

वीतराग का लक्षण

क्षुत्पिपासा - जरातङ्क - जन्मान्तक - भयस्मयाः।
न रागद्वेषमोहाश्च, यस्याप्तः स प्रकीर्त्यते।। 6॥

अन्वयार्थ : (**यस्य**) जिसके (**क्षुत्-पिपासाजरातङ्क-जन्मान्तक भयस्मयाः**) भूख, प्यास, बुढ़ापा, रोग, जन्म, मरण, भय, गर्व (**रागद्वेषमोहाः**) राग, द्वेष, मोह (**च**) और चिंता, अरति, निद्रा, विस्मय, मद, स्वेद और खेद ये अठारह दोष (**न**) नहीं हैं (**सः**) वह (**आप्तः**) आप्त-सच्चा देव (**प्रकीर्त्यते**) कहा जाता है।

भावार्थ : जो भूख, प्यास, बुढ़ापा, रोग, जन्म, मरण, भय, गर्व, राग, द्वेष, मोह, चिंता, अरति, निद्रा, आश्चर्य, मद, स्वेद और खेद, इन अठारह दोषों से रहित हैं, वह वीतराग हैं।

आप्त की नामावली

परमेष्ठी परंज्योतिर्विरागो विमलः कृती।
सर्वज्ञोऽनादिमध्यान्तः, सार्वः शास्तोपलाल्यते॥ 7॥

अन्वयार्थ : (**स आप्तः**) वह आप्त, (**परमेष्ठी**) परमेष्ठी (**परं-ज्योतिः**) केवलज्ञानी (**विरागः**) राग से रहित (**विमलः**) विमल (**कृती**) कृतकृत्य (**सर्वज्ञः**) सर्वज्ञ (**अनादिमध्यान्तः**) आदि, मध्य तथा अन्त से रहित (**सार्वः**) सार्व-सर्वहितकर्ता और (**शास्ता**) हितोपदेशक (**उपलाल्यते**) कहा जाता है-ये सब आप्त के नाम हैं।

भावार्थ : वह सच्चा देव परमपद में स्थित, अक्षय कैवल्य से युक्त, वीतराग, कृतकृत्य, विमल, निर्मल, आदि-मध्य-अन्तरहित, सर्व पदार्थों का ज्ञाता/दृष्टा, सर्वहितकर्ता और हितोपदेशक कहा जाता है।

वीतराग देव के उपदेश में राग का अभाव

अनात्मार्थं विना रागैः, शास्ता शास्ति सतो हितम्।
ध्वनन् शिल्पिकरस्पर्शान्मुरजः किमपेक्षते ॥ 8॥

अन्वयार्थ : (**शास्ता**) आप्त भगवान् (**रागैः विना**) रागद्वेष आदि के बिना (**अनात्मार्थम्**) अपना प्रयोजन न होने पर भी (**सतः**) समीचीन-भव्यजीवों को (**हितं शास्ति**) हित का उपदेश देते हैं क्योंकि (**शिल्पिकर-स्पर्शात्**) बजाने वाले के हाथ के स्पर्श से (**ध्वनन्**) शब्द करता हुआ (**मुरजः**) मृदंग (**किम् अपेक्षते**) क्या कुछ अपेक्षा रखता है ? अर्थात् कुछ नहीं।

भावार्थ : जैसे मृदंग, वादक के हाथ का स्पर्श पाकर अपनी मधुर ध्वनि से श्रोताओं को मुग्ध करता है, किन्तु बदले में यश प्रशंसा नहीं चाहता है और न ही श्रोताओं पर अनुरक्त होता है, उसी तरह हितोपदेशी वीतराग प्रभु प्राणियों के पुण्य के निमित्त से बिना इच्छा सहज ही उपदेश देते हैं तथापि श्रोताओं से न तो लाभादि की अपेक्षा करते हैं और न ही उन पर अनुरक्त होते हैं।

सच्चे शास्त्र का स्वरूप

आप्तोपज्ञमनुल्लङ्घ्य - मदृष्टेष्टविरोधकं।
तत्त्वोपदेशकृत्सार्वं, शास्त्रं कापथघट्टनं॥ 9॥

अन्वयार्थ : [**तत्**] वह (**शास्त्रम्**) शास्त्र (**आप्तोपज्ञम्**) भगवान् के द्वारा कहा गया है (**अनुल्लङ्घ्यम्**) खण्डनरहित (**अदृष्टेष्टविरोधकम्**) प्रत्यक्ष और अनुमानादि के विरोध से रहित (**तत्त्वोपदेशकृत्**) तत्त्व का उपदेश करने वाला (**सार्वम्**) सबका हितकारी और (**कापथघट्टनम्**) मिथ्यामार्ग का खण्डन करने वाला है।

भावार्थ : जो वीतरागी द्वारा कहा गया है, इन्द्रादिक देवों के द्वारा अनुलङ्घनीय है अर्थात् ग्रहण करने के योग्य है अथवा अन्य वादियों के द्वारा अखण्डनीय है, प्रत्यक्ष-परोक्ष आदि प्रमाणों से जो अबाधित है, जो वस्तुस्वरूप का प्रतिपादक है, जो सबका हित करने वाला और मिथ्यात्व को नष्ट करने वाला है, वह सच्चाशास्त्र है।

सच्चे गुरु का स्वरूप

विषयाशावशातीतो, निरारम्भोऽपरिग्रहः ।
ज्ञानध्यानतपोरक्तस् तपस्वी स प्रशस्यते ॥ 10॥

अन्वयार्थ : [**यः**] जो (**विषयाशावशातीतः**) विषयों की आशा के वश से रहित हो (**निरारम्भः**) आरम्भ रहित हो (**अपरिग्रहः**) परिग्रह रहित हो और (**ज्ञानध्यानतपोरक्तः**) ज्ञान, ध्यान तथा तप में लवलीन हो (**सः**) वह (**तपस्वी**) गुरु (**प्रशस्यते**) प्रशंसनीय है।

भावार्थ : जो पाँचों इन्द्रियों की लालसाओं के फंदे से बाहर हैं, जो कृषि आदि बाह्य तथा रागद्वेष, क्रोध, मान आदि आभ्यन्तर परिग्रह के त्यागी हैं और ज्ञान, ध्यान, तप में लवलीन हैं, वे सच्चे गुरु हैं।

निःशंकित अंग का स्वरूप

इदमेवेदृशमेव, तत्त्वं नान्यन्न चान्यथा ।
इत्यकम्पायसाम्भोवत्, सन्मार्गेऽसंशयारुचिः॥ 11॥

अन्वयार्थ : (**तत्त्वं**) तत्त्व (**इदम्**) यह (**एव**) ही है (**ईदृशम्**) ऐसा (**एव**) ही है (**अन्यत्**) अन्य (**न**) नहीं है और (**अन्यथा**) अन्य प्रकार भी (**न**) नहीं है (**इति**) इस तरह देव, शास्त्र, गुरु के प्रवाह रूप समीचीन मोक्षमार्ग के विषय में (**आयसाम्भोवत्**) लोहे के पानी के समान (**अकम्पा**) अटल (**रुचिः**) श्रद्धा (**असंशया**) निःशंकित अंग है।

भावार्थ : जिस प्रकार तलवार आदि की धार पर रखा पानी तलवार के खण्ड-खण्ड हो जाने पर भी यथा रूप बना रहता है, उसी तरह सच्चे देव, शास्त्र, गुरु के विषय में इनका लक्षण यही है, ऐसा ही है और नहीं है तथा और तरह का नहीं है, ऐसी अटल अविचल आस्था सम्यक्त्व का निःशंकित अंग है।

निःकांक्षित अंग का स्वरूप

कर्मपरवशे सान्ते, दुःखैरन्तरितोदये ।
पापबीजे सुखेऽनास्था, श्रद्धानाकाङ्क्षणा स्मृता॥ 12॥

अन्वयार्थ : (**कर्मपरवशे**) कर्मों के अधीन (**सान्ते**) नश्वर (**दुःखैः**) दुःखों से (**अन्तरितोदये**) बाधित (**च**) और (**पापबीजे**) पाप के कारण (**सुखे**) सुख में (**अनास्था**) अरुचिपूर्ण (**श्रद्धानं**) श्रद्धान को (**अनाकाङ्क्षणा**) निःकांक्षित अंग (**स्मृता**) कहते हैं।

भावार्थ : इन्द्रिय सुख, शुभ कर्म के अधीन, नश्वर, शारीरिक और मानसिक दु:खों से मिश्रित, पाप के कारण हैं तथा इनका समागम क्षणवर्ती है। अत: इनमें आसक्ति न रखना, इनके प्रति विरक्त रहना नि:कांक्षित अंग है।

निर्विचिकित्सा अंग का स्वरूप

स्वभावतोऽशुचौ काये, रत्नत्रयपवित्रिते ।
निर्जुगुप्सा गुणप्रीतिर्मता निर्विचिकित्सिता॥ 13॥

अन्वयार्थ : (**स्वभावत:**) स्वभाव से (**अशुचौ**) अपवित्र किन्तु (**रत्नत्रयपवित्रिते**) रत्नत्रय से पवित्र (**काये**) शरीर में (**निर्जुगुप्सा**) ग्लानि रहित (**गुणप्रीति:**) गुणों से प्रेम करना (**निर्विचिकित्सा**) निर्विचिकित्सा अंग (**मता**) माना गया है।

भावार्थ : यह शरीर मलमूत्र आदि अपवित्रताओं का पिटारा है किन्तु यदि इसमें सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की प्राप्ति हो जाए तो यही महान् पवित्र भी है। अत: इसकी अपावनताओं पर ध्यान न देकर, केवल यह मनुष्य शरीर ही मोक्षसाधक है, अन्य देवादिक शरीर नहीं, इस प्रकार की अनुभूति के साथ रत्नत्रय में प्रीति रखना निर्विचिकित्सा अंग है।

अमूढ़दृष्टि अंग का स्वरूप

कापथे पथि दु:खानां, कापथस्थेऽप्यसम्मति:।
असंपृक्ति-रनुत्कीर्ति-रमूढा दृष्टिरुच्यते ॥ 14॥

अन्वयार्थ : [**या दृष्टि:**] जो दृष्टि (**दु:खानां**) दु:खों के (**पथि**) मार्ग स्वरूप (**कापथे**) मिथ्यादर्शनादिरूप कुमार्ग में और (**कापथस्थेऽपि**) कुमार्ग में स्थित जीव में भी (**असम्मति:**) मानसिक सम्मति से रहित (**अनुत्कीर्ति:**) वाचनिक प्रशंसा से रहित और (**असम्पृक्ति:**) शारीरिक सम्पर्क से रहित है, वह (**अमूढा दृष्टि:**) अमूढ़दृष्टि अंग (**उच्यते**) कहा जाता है।

भावार्थ : मिथ्यात्व आदि की तथा इनके समर्थकों, अनुगामियों की मन से, वचन से और काय से प्रशंसा न करना अमूढ़दृष्टि अंग है।

उपगूहन अंग का स्वरूप

स्वयं शुद्धस्य मार्गस्य, बालाशक्तजनाश्रयाम्।
वाच्यतां यत्प्रमार्जन्ति, तद्वदन्त्युपगूहनं ॥ 15॥

अन्वयार्थ : (स्वयं शुद्धस्य) स्वभाव से पवित्र **(मार्गस्य)** रत्नत्रय रूप मार्ग की **(बालाशक्तजनाश्रयां)** अज्ञानी तथा असमर्थ मनुष्यों के आश्रय से होने वाली **(वाच्यतां)** निन्दा को **(यत्)** जो **(प्रमार्जन्ति)** प्रमार्जित करते हैं – दूर करते हैं **(तत्)** उनके उस प्रमार्जन को **(उपगूहनं)** उपगूहन गुण **(वदन्ति)** कहते हैं।

भावार्थ : स्वभाव से पवित्र जैनधर्म व मोक्षमार्ग की उसके पालन करने वाले जीवों से कदाचित् अज्ञानता या असमर्थतावश कोई गलती हो जावे, तो उसे ढाँककर जैनधर्म को सुरक्षित रखना, उपगूहन अंग है।

स्थितिकरण अंग का स्वरूप

दर्शनाच्चरणाद्वापि, चलतां धर्मवत्सलैः ।
प्रत्यवस्थापनं प्राज्ञैः, स्थितिकरणमुच्यते ॥ 16 ॥

अन्वयार्थ : (धर्मवत्सलैः) धर्मस्नेही जनों के द्वारा **(दर्शनात्)** सम्यग्दर्शन से **(वा)** अथवा **(चरणात्)** सम्यक् चारित्र से **(अपि)** भी **(चलताम्)** विचलित होते हुए पुरुषों का **(प्रत्यवस्थापनम्)** फिर से पहले की तरह स्थित किया जाना **(प्राज्ञैः)** विद्वानों के द्वारा **(स्थितिकरणम्)** स्थितिकरण अंग **(उच्यते)** कहा जाता है।

भावार्थ : तीव्र कषाय, कुसंगति, रोग, दरिद्रता, मिथ्योपदेश अथवा मिथ्यादृष्टियों के चमत्कारिक भुलावें में आकर जो जीव सम्यग्दर्शन या सम्यक्चारित्र से विचलित हो, उन्हें पुनः उसी में सुस्थिर/सुदृढ़ करना स्थितिकरण अंग है।

वात्सल्य अंग का स्वरूप

स्वयूथ्यान्प्रति सद्भाव-सनाथापेतकैतवा ।
प्रतिपत्तिर्यथायोग्यं, वात्सल्यमभिलप्यते ॥ 17 ॥

अन्वयार्थ : (स्वयूथ्यान्प्रति) अपने सहधर्मी बन्धुओं के समूह में रहने वाले लोगों के प्रति **(सद्भावसनाथा)** सरलता सहित **(अपेतकैतवा)** मायाचार रहित **(यथायोग्यम्)** उनकी योग्यता के अनुसार **(प्रतिपत्तिः)** पूजा, आदर-सत्कार आदि करना **(वात्सल्यम्)** वात्सल्य अंग **(अभिलप्यते)** कहा जाता है।

भावार्थ : वीतराग धर्म के अनुगामी मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका तथा सम्यग्दृष्टि का, सरल हृदय, निष्कपट चित्त से स्तुति, नमस्कृति, दान, उच्चस्थान, प्रशंसा और उपकरण आदि से उनका आदर-सत्कार वात्सल्य अंग है।

प्रभावना अंग का स्वरूप

अज्ञानतिमिरव्याप्तिमपाकृत्य यथायथम्।
जिनशासनमाहात्म्यप्रकाशः स्यात्प्रभावना ॥ 18॥

अन्वयार्थ : (अज्ञानतिमिरव्याप्तिम्) अज्ञानरूपी अन्धकार के विस्तार को **(अपाकृत्य)** दूरकर **(यथायथम्)** अपनी शक्ति के अनुसार **(जिनशासन माहात्म्यप्रकाशः)** जिनशासन के माहात्म्य को प्रकट करना **(प्रभावना)** प्रभावना अंग **(स्यात्)** है।

भावार्थ : पूजा/तप आदि के विषय में अज्ञानवश फैली भ्रान्तियों को समीचीन उपायों से दूर कर जैन धर्म की महिमा को प्रकट करना प्रभावना अंग है।

आठ अंगों में प्रसिद्ध व्यक्ति

तावदञ्जनचौरोऽङ्गे, ततोऽनन्तमतिः स्मृता ।
उद्दायनस्तृतीयेऽपि, तुरीये रेवती मता ॥19॥
ततो जिनेन्द्रभक्तोऽन्यो, वारिषेणस्ततः परः।
विष्णुश्च वज्रनामा च, शेषयोर्लक्ष्यतां गतौ॥ 20॥

अन्वयार्थः (तावत्) क्रम से **(प्रथमे)** प्रथम अंग में **(अञ्जनचौरः)** अञ्जन चोर **(स्मृता)** स्मृत है, **(ततः)** तदनन्तर द्वितीय अंग में **(अनन्तमतिः)** अनन्तमती **(स्मृता)** स्मृत हुई है, **(तृतीये)** तृतीय अंग में **(उद्दायनः)** उद्दायन नाम का राजा **(मता)** माना गया है, **(तुरीये)** चतुर्थ अंग में **(रेवती)** रेवती रानी **(मता)** मानी गयी है, **(ततः)** तदनन्तर पञ्चम अंग में **(जिनेन्द्रभक्तः)** जिनेन्द्रभक्त सेठ **(ततःअन्यः)** उसके बाद षष्ठ अंग में **(वारिषेणः)** वारिषेण राजकुमार **(ततःपरः)** उसके बाद **(शेषयोः)** सप्तम और अष्टम अंग में **(विष्णुः)** विष्णुकुमार मुनि **(च)** और **(वज्रनामा)** वज्रकुमार मुनि **(लक्ष्यताम्)** प्रसिद्धि को **(गतौ)** प्राप्त हुए हैं।

भावार्थ : पहले निःशंकित अंग में अंजनचोर, दूसरे निःकांक्षित अंग में अनन्तमती रानी, तीसरे निर्विचिकित्सा अंग में उद्वायन राजा, चौथे अमूढ़दृष्टि अंग में रेवती रानी, पाँचवें उपगूहन अंग में जिनेन्द्र भक्त सेठ, छठे स्थितिकरण अंग में श्रेणिक राजा का पुत्र वारिषेण, सातवें वात्सल्य अंग में विष्णुकुमार मुनि और आठवें प्रभावना अंग में वज्रकुमार मुनि प्रसिद्ध हुए हैं।

अंगहीन सम्यग्दर्शन की दशा

नाङ्गहीनमलं छेत्तुं, दर्शनं जन्मसन्ततिम् ।
न हि मन्त्रोऽक्षरन्यूनो, निहन्ति विषवेदनां ॥21॥

अन्वयार्थ : (**अङ्गहीनं**) अंगों से हीन (**दर्शनम्**) सम्यग्दर्शन (**जन्म सन्ततिम्**) संसार की सन्तति को (**छेत्तुम्**) नष्ट करने के लिए [**अलं न**] समर्थ नहीं है। (**हि**) क्योंकि (**अक्षरन्यूनः**) एक अक्षर से भी हीन (**मन्त्रः**) मंत्र (**विषवेदनाम्**) विष की पीड़ा को (**न निहन्ति**) नष्ट नहीं करता।

भावार्थ : जैसे अक्षर न्यून मंत्र सर्प आदि की पीड़ा को दूर करने में असमर्थ होता है, उसी प्रकार एक भी अंग से हीन होने पर सम्यग्दर्शन भी संसार-परिभ्रमण से मुक्त कराने में अशक्त होता है। परिपूर्ण सम्यग्दर्शन ही सार्थक होता है।

लोकमूढ़ता का स्वरूप

आपगा-सागर-स्नानमुच्चयः सिकताश्मनाम्।
गिरिपातोऽग्निपातश्च, लोकमूढं निगद्यते ॥ 22॥

अन्वयार्थ : (**आपगासागरस्नानम्**) नदी और समुद्र में स्नान करना (**सिकताश्मनाम्**) बालू और पत्थरों का (**उच्चयः**) ढेर लगाना (**गिरिपातः**) पर्वत से गिरना (**च**) और (**अग्निपातः**) अग्नि में पड़ना (**लोकमूढम्**) लोकमूढ़ता (**निगद्यते**) कही जाती है।

भावार्थ : धर्मलाभ या स्वकल्याण मानकर नदी, समुद्र आदि में स्नान करना, बालू-रेत या पत्थर की ढेरियाँ लगाना, पर्वत से गिरना और आग में जलना इत्यादि लोकमूढ़ताएँ हैं-अंधविश्वास हैं। इनसे बचना चाहिए।

देवमूढ़ता का स्वरूप

वरोपलिप्सयाशावान्, रागद्वेषमलीमसाः ।
देवता यदुपासीत, देवतामूढमुच्यते ॥ 23॥

अन्वयार्थ : (**वरोपलिप्सया**) वरदान प्राप्त करने की इच्छा से (**आशावान्**) आशा से युक्त हो (**रागद्वेषमलीमसाः**) राग-द्वेष से मलिन (**देवताः**) देवों की (**यत्**) जो (**उपासीत**) आराधना की जाती है (**तत्**) वह (**देवतामूढम्**) देवमूढ़ता (**उच्यते**) कही जाती है।

भावार्थ : पुत्र प्राप्ति, रोग मुक्ति या धन लाभ जैसे लौकिक लाभों के लिए रागी/द्वेषी देवताओं की पूजा-आराधना देवमूढ़ता है।

गुरुमूढ़ता का स्वरूप

सग्रन्थारम्भहिंसानां, संसारावर्तवर्तिनाम्।
पाषण्डिनां पुरस्कारो, ज्ञेयं पाषण्डिमोहनं ॥24॥

अन्वयार्थ : (**सग्रन्थारम्भहिंसानां**) परिग्रह, आरम्भ और हिंसा सहित, तथा (**संसारावर्तवर्तिनाम्**) संसार भ्रमण के कारणभूत कार्यों में लीन (**पाषण्डिनाम्**) अन्य कुलिंगियों को (**पुरस्कारः**) अग्रेसर करना / प्रोत्साहित करना (**पाषण्डिमोहनम्**) पाषण्डिमूढ़ता-गुरुमूढ़ता (**ज्ञेयम्**) जानने के योग्य है।

भावार्थ :जो सग्रन्थ हैं-निर्ग्रन्थ नहीं हैं, आरम्भ सहित हैं, हिंसा में प्रवृत्त हैं, संसार के गोरखधंधे में फँसे हुए हैं, ऐसे पाखण्डियों का जो आदर-सत्कार है, वह पाखण्डिमूढ़ता-गुरुमूढ़ता है।

आठ मद के नाम

ज्ञानं पूजां कुलं जातिं, बलमृद्धिं तपो वपुः।
अष्टावाश्रित्य मानित्वं, स्मयमाहुर्गतस्मयाः ॥25॥

अन्वयार्थ : (**ज्ञानम्**) ज्ञान, (**पूजाम्**) प्रतिष्ठा, (**कुलम्**) कुल, (**जातिम्**) जाति, (**बलम्**) बल, (**ऋद्धिम्**) धनसम्पत्ति, (**तपः**) तप (**च**) और (**वपुः**) शरीर (**अष्टौ**) इन आठ पदार्थों का (**आश्रित्य**) आश्रय लेकर (**मानित्वम्**) गर्वित होने को (**गतस्मयाः**) गर्व से रहित गणधर आदिक (**स्मयम्**) गर्व/मद (**आहुः**) कहते हैं।

भावार्थ : ज्ञान, पूजा, कुल, जाति, बल, ऋद्धि, तप और देह इन आठों का आश्रय लेकर जो गर्व करता है, मद रहित पुरुष-सर्वज्ञ भगवान् उन्हें मद कहते हैं।

मद से हानि

स्मयेन योऽन्यानत्येति, धर्मस्थान् गर्विताशयः।
सोऽत्येति धर्ममात्मीयं, न धर्मो धार्मिकैर्विना ॥26॥

अन्वयार्थ : (**स्मयेन**) उपर्युक्त मद से (**गर्विताशयः**) गर्वितचित्त होता हुआ (**यः**) जो पुरुष (**धर्मस्थान्**) रत्नत्रय रूप धर्म में स्थित (**अन्यान्**) अन्य जीवों को (**अत्येति**) तिरस्कृत करता है (**सः**) वह (**आत्मीयं**) अपने (**धर्मम्**) धर्म को (**अत्येति**) तिरस्कृत करता है।[**यतः**] क्योंकि (**धार्मिकैः विना**) धर्मात्माओं के बिना (**धर्मः**) धर्म (**न**) नहीं होता है।

भावार्थ : जो गर्व के वशीभूत रत्नत्रयरूप धर्म में स्थित धार्मिकों की अवमानना करता है, वह निश्चय से अपने ही की अवज्ञा करता है, क्योंकि यह एक ध्रुव सत्य है कि धार्मिकों के बिना धर्म का अस्तित्व संभव नहीं है।

मद जीतने का उपाय

यदि पापनिरोधोऽन्यसम्पदा किं प्रयोजनम्।
अथ पापास्त्रवोऽस्त्यन्यसम्पदा किं प्रयोजनम् ॥27॥

अन्वयार्थ : (**यदि**) यदि (**पापनिरोधः**) पाप को रोकने वाला रत्नत्रयधर्म है तो (**अन्यसम्पदा**) दूसरी सम्पत्ति से (**किम्**) क्या (**प्रयोजनम्**) प्रयोजन है (**अथ**) यदि (**पापास्त्रवः**) पाप का आस्त्रव (**अस्ति**) है तो (**अन्यसम्पदा**) अन्य सम्पत्ति से (**किम्**) क्या (**प्रयोजनम्**) प्रयोजन है?

भावार्थ : यदि किसी के पास पाप निरोध के लिए रत्नत्रय निधि है तो फिर उसे अन्य किसी सम्पदा की क्या आवश्यकता है? और यदि किसी के पास पापास्त्रव (मिथ्यादर्शनादि) हैं तो फिर अन्य लौकिक सम्पदाओं की क्या सार्थकता है? वे तो कालान्तर में नष्ट होंगी ही।

सम्यग्दर्शन की महिमा

सम्यग्दर्शनसम्पन्नमपि मातङ्गदेहजम्।
देवादेवं विदुर्भस्मगूढाङ्गारान्तरौजसम् ॥28॥

अन्वयार्थ : (**देवः**) जिनेन्द्रदेव (**सम्यग्दर्शनसम्पन्नम्**) सम्यग्दर्शन सहित (**मातङ्गदेहजम्**) चाण्डाल कुल में उत्पन्न हुए को (**अपि**) भी (**भस्मगूढाङ्गारान्तरौजसं**) राख के भीतर ढके हुए अंगार के भीतरी प्रकाश के समान (**देवम्**) पूज्य (**विदुः**) कहते हैं।

भावार्थ : जो व्यक्ति सम्यग्दर्शन से समृद्ध या सम्पन्न है, वह चाण्डाल-पुत्र होने पर भी देवों से श्रेष्ठ है। उसकी स्थिति उस अंगारे की तरह है, जो बाहर से राख से ढका है, किन्तु अंतरंग में तेज और प्रकाश से युक्त है।

धर्म और अधर्म का फल

श्वापि देवोऽपि देवः श्वा, जायते धर्मकिल्विषात्।
काऽपि नाम भवेदन्या, सम्पद्धर्माच्छरीरिणाम् ॥29॥

अन्वयार्थ : (**धर्मकिल्विषात्**) धर्म और पाप से (**श्वा**) कुत्ता (**अपि**) भी (**देवः**) देव [**च**] और (**देवः**) देव (**अपि**) भी (**श्वा**) कुत्ता (**जायते**) हो जाता है (**शरीरिणाम्**) जीवों के (**धर्मात्**) धर्म से (**अन्या**) अन्य और (**अपि**) भी (**का**) अनिर्वचनीय (**सम्पत्**) सम्पदा (**भवेत्**) प्राप्त होती है।

भावार्थ : मनुष्य तो मनुष्य, एक कुत्ता भी धर्म के प्रताप से देवत्व प्राप्त कर सकता है। इसी तरह धर्म या धर्मात्मा के तिरस्कार के कारण देव भी कुत्ता हो सकता है। वस्तुतः इस श्लोक में यह स्पष्ट किया गया है कि ऐश्वर्यादि से वंचित धर्मात्मा भी सम्मान्य होता है, यहाँ तक कि ऐसा जीव पशु भी हो तो भी वह आदर के योग्य है। अधिक की बात ही क्या? धर्म से अहमिन्द्रपना और मोक्षपना भी कठिन नहीं है।

सम्यग्दृष्टि कुदेवादिक को नमस्कार न करे

भयाशास्नेहलोभाच्च, कुदेवागमलिङ्गिनाम्।
प्रणामं विनयं चैव, न कुर्य्युः शुद्धदृष्टयः ॥ 30॥

अन्वयार्थ : (**शुद्धदृष्टयः**) शुद्धसम्यग्दृष्टि जीव (**भयाशास्नेह-लोभात्**) भय, आशा, प्रेम और लोभ से (**कुदेवागम लिङ्गिनाम्**) कुदेव, कुशास्त्र और कुगुरुओं के लिए (**प्रणामम्**) प्रणाम को (**च**) और (**विनयम्**) विनय को (**एव**) भी (**न कुर्य्युः**) नहीं करें।

भावार्थ :शुद्ध सम्यग्दृष्टियों को चाहिए कि वे भय, आशा, स्नेह या लोभ के वशीभूत हो, अहितकारी देव, शास्त्र और गुरु को प्रणाम आदि के रूप में आदर-सत्कार न करें।

सम्यग्दर्शन की श्रेष्ठता

दर्शनं ज्ञानचारित्रात्साधिमानमुपाश्नुते।
दर्शनं कर्णधारं तन्मोक्षमार्गे प्रचक्षते॥ 31॥

अन्वयार्थ : [**यत्**] जिस कारण (**ज्ञानचारित्रात्**) ज्ञान और चारित्र की अपेक्षा (**दर्शनम्**) सम्यग्दर्शन (**साधिमानम्**) श्रेष्ठता या उत्कृष्टता को (**उपाश्नुते**) प्राप्त होता है [**तत्**] उस कारण से (**दर्शनम्**) सम्यग्दर्शन को (**मोक्षमार्गे**) मोक्षमार्ग के विषय में (**कर्णधारम्**) खेवटिया (**प्रचक्षते**) कहते हैं।

भावार्थ :सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की अपेक्षा सम्यग्दर्शन उत्कृष्टता को प्राप्त है, अतः मोक्षमार्ग में इसे कर्णधार-खेवटिया कहा गया है।

सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान चारित्र की असंभवता

विद्यावृत्तस्य सम्भूतिस्थितिवृद्धिफलोदयाः।
न सन्त्यसति सम्यक्त्वे, बीजाभावे तरोरिव॥ 32॥

अन्वयार्थ : (**बीजाभावे**) बीज के अभाव में (**तरोःइव**) वृक्ष की तरह (**सम्यक्त्वे असति**) सम्यग्दर्शन के न होने पर (**विद्यावृत्तस्य**) ज्ञान और चारित्र की (**सम्भूति-स्थिति-वृद्धि-फलोदयाः**) उत्पत्ति, स्थिति, वृद्धि और फल की उद्भूति (**न सन्ति**) नहीं होती।

भावार्थ : जिस तरह बीज के न होने पर वृक्ष की उत्पत्ति, वृद्धि और फल की सम्प्राप्ति नहीं बनती, उसी तरह सम्यक्त्व की अनुपस्थिति में सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की उत्पत्ति, वृद्धि तथा फल की उत्पत्ति नहीं बनती।

मोही मुनि की अपेक्षा निर्मोही गृहस्थ श्रेष्ठ

गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो, निर्मोहो नैव मोहवान्।
अनगारो गृही श्रेयान्, निर्मोहो मोहिनो मुनेः॥33॥

अन्वयार्थ : (**निर्मोहः**) मोह-मिथ्यात्व से रहित (**गृहस्थः**) गृहस्थ (**मोक्षमार्गस्थः**) मोक्षमार्ग में स्थित है परन्तु (**मोहवान्**) मोह-मिथ्यात्व से सहित (**अनगारः**) मुनि (**नैव**) मोक्षमार्ग में स्थित नहीं है (**मोहिनः**) मोही मिथ्यादृष्टि (**मुनेः**) मुनि की अपेक्षा (**निर्मोहः**) मोहरहित-सम्यग्दृष्टि (**गृही**) गृहस्थ (**श्रेयान्**) श्रेष्ठ [**अस्ति**] है।

भावार्थ : निर्मोही गृहस्थ मोक्षमार्गी है, किन्तु मोहग्रस्त गृहत्यागी मुनि मोक्षमार्गस्थ नहीं है। जो भी गृहस्थ मिथ्यादर्शन रहित सम्यग्दृष्टि है, वह दर्शनमोह से युक्त मिथ्यादृष्टि मुनि से श्रेष्ठ है।

श्रेय और अश्रेय का कथन

न सम्यक्त्वसमं किञ्चित्-त्रैकाल्ये त्रिजगत्यपि।
श्रेयोऽश्रेयश्च मिथ्यात्वसमं नान्यत्तनूभृताम् ॥34॥

अन्वयार्थ : (**तनूभृताम्**) प्राणियों के (**त्रैकाल्ये**) तीनों कालों में और (**त्रिजगत्यपि**) तीनों लोकों में भी (**सम्यक्त्वसमम्**) सम्यग्दर्शन के समान (**श्रेयः**) कल्याणरूप (**च**) और (**मिथ्यात्वसमम्**) मिथ्यादर्शन के समान (**अश्रेयः**) अकल्याणरूप (**किंचित्**) किंचित (**अन्यत्**) दूसरा (**न**) नहीं है ।

भावार्थ : तीनों कालों और तीनों लोकों में अन्य कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो सम्यग्दर्शन के समान देहधारियों के लिए श्रेयरूप हो और न ही ऐसी कोई अन्य वस्तु है, जो मिथ्यादर्शन के समान अहितरूप हो।

सम्यग्दृष्टि के अनुत्पत्ति के स्थान

सम्यग्दर्शनशुद्धा, नारक - तिर्यङ् - नपुंसकस्त्रीत्वानि।
दुष्कुल-विकृताल्पायुर्दरिद्रतां च व्रजन्ति नाप्यव्रतिकाः ॥35॥

अन्वयार्थ : (**सम्यग्दर्शनशुद्धाः**) शुद्ध सम्यग्दृष्टि जीव (**अव्रतिकाः**) व्रत रहित होने पर (**अपि**) भी (**नारक-तिर्यङ्-नपुंसकस्त्रीत्वानि**) नारक, तिर्यञ्च, नपुंसक और स्त्रीपने को (**च**) और (**दुष्कुलविकृताल्पायुर्दरिद्रताम्**) नीचकुल, विकलांग अवस्था, अल्पायु और दरिद्रता को (**न व्रजन्ति**) प्राप्त नहीं होते हैं।

भावार्थ : जो सम्यग्दर्शन से शुद्ध हैं, वे अव्रती होते हुए भी नरक, तिर्यंच गति को तथा नपुंसक एवं स्त्री पर्याय को प्राप्त नहीं होते और निन्द्य कुल को, अंगों की विकलता को, अल्पायु को तथा दरिद्रता को भी प्राप्त नहीं होते हैं।

सम्यग्दृष्टि जीव श्रेष्ठ मनुष्य होते हैं

ओजस्तेजो - विद्यावीर्ययशोवृद्धि - विजयविभवसनाथाः।
माहाकुला महार्था, मानवतिलका भवन्ति दर्शनपूताः ॥36॥

अन्वयार्थ : (**दर्शनपूताः**) सम्यग्दर्शन से पवित्र जीव (**ओजः तेजोः**) उत्साह, प्रताप-कान्ति, (**विद्या**) विद्या, (**वीर्य**) बल, (**यशोः**) कीर्ति, (**वृद्धि**) उन्नति, (**विजय**) विजय और (**विभवसनाथाः**) सम्पत्ति के स्वामी (**माहाकुलाः**) उच्चकुलोत्पन्न (**च**) और (**महार्थाः**) पुरुषार्थ से सहित (**मानवतिलकाः**) मनुष्यों में श्रेष्ठ (**भवन्ति**) होते हैं।

भावार्थ : सम्यग्दर्शन से जिनकी आत्मा पवित्र हुई है, वे ऐसे मानव तिलक होते हैं, जो ओज, तेज, विद्या, वीर्य, यश, वृद्धि और विभव से युक्त होते हैं, महाकुलीन, उत्कृष्ट पुरुषार्थी और मनुष्यों के शिरोमणि होते हैं।

सम्यग्दृष्टि ही इन्द्र पद पाते हैं

अष्टगुणपुष्टितुष्टा, दृष्टिविशिष्टाः प्रकृष्टशोभाजुष्टाः।
अमराप्सरसां परिषदि, चिरं रमन्ते जिनेन्द्रभक्ताः स्वर्गे ॥37॥

अन्वयार्थ : (**दृष्टिविशिष्टाः**) सम्यग्दर्शन से सहित (**जिनेन्द्र भक्ताः**) भगवान् जिनेन्द्र के भक्त पुरुष (**स्वर्गे**) स्वर्ग में (**अमराप्सरसाम्**) देवों और अप्सराओं की (**परिषदि**) सभा में (**अष्टगुणपुष्टितुष्टा**) अणिमा आदि आठ ऋद्धियों अथवा अणिमादि आठ गुणों की पुष्टि से सन्तुष्ट और (**प्रकृष्टशोभाजुष्टाः**) विशेष सुन्दरता सहित होते हुए (**चिरम्**) बहुत काल तक (**रमन्ते**) आनन्द करते हैं।

भावार्थ : सम्यग्दर्शन की विशेषता को प्राप्त जिनोपासक अणिमा आदि अष्ट गुणों की पुष्टि से संतुष्ट और अतिशय शोभा-सम्पन्न होते हुए चिरकाल तक देव-देवांगनाओं की सभा में रमण करते हैं।

सम्यग्दर्शन का माहात्म्य

नवनिधिसप्तद्वय रत्नाधीशाः सर्वभूमिपतयश्चक्रम् ।
वर्तयितुं प्रभवन्ति, स्पष्टदृशः क्षत्रमौलिशेखरचरणाः ॥38॥
अमरासुरनरपतिभिर्यमधरपतिभिश्च नूतपादाम्भोजाः।
दृष्ट्यासुनिश्चितार्था, वृषचक्रधरा भवन्ति लोकशरण्याः ॥39॥

अन्वयार्थ : (**स्पष्टदृशः**) निर्मल सम्यग्दृष्टि जीव (**नवनिधि सप्तद्वयरत्नाधीशाः**) नव निधि और चौदह रत्नों के स्वामी तथा (**क्षत्रमौलिशेखर चरणाः**) क्षत्रिय राजाओं के मुकुटों सम्बन्धी कलंगियों पर

जिनके चरण हैं ऐसे (**सर्वभूमिपतयः**) समस्त छः खण्डों के स्वामी होते हुए (**चक्रम्**) चक्ररत्न (**वर्तयितुम्**) चलाने को (**प्रभवन्ति**) समर्थ होते हैं।

(**दृष्ट्या**) सम्यग्दर्शन के माहात्म्य से (**अमरासुरनरपतिभिः**) देवेन्द्र, धरणेन्द्र और चक्रवर्ती से (**च**) और (**यमधरपतिभिः**) मुनियों के स्वामी गणधरों के द्वारा (**नूतपादाम्भोजाः**) जिनके चरणकमलों की स्तुति की जाती है (**सुनिश्चितार्थाः**) जिन्होंने पदार्थ का अच्छी तरह निश्चय किया है तथा जो (**लोकशरण्याः**) तीनों लोकों के शरणभूत हैं, ऐसे (**वृषचक्रधराः**) धर्मचक्र के धारक तीर्थंकर (**भवन्ति**) होते हैं।

भावार्थ : जो निर्मल सम्यग्दर्शन को धारण करने वाले हैं, वे नव निधियों और चौदह रत्नों के अधिपति और सर्वभूमि के स्वामी होते हुए चक्र रत्न को प्रवर्तित करने में समर्थ होते हैं तथा उनके चरणों में राजाओं के मुकुट-किरीट झुकते हैं।

जिन्होंने अनेकान्तदृष्टि से अर्थ का भली-भाँति निश्चय किया है, ऐसे सम्यग्दृष्टि जीव धर्मचक्र के धारक तीर्थंकर होते हैं, जिनके चरण कमलों की स्तुति देवेन्द्र, धरणेन्द्र, चक्रवर्ती और गणधरों द्वारा की जाती है।

सम्यग्दृष्टि ही मोक्षपद पाते हैं

शिव-मजर - मरुज-मक्षय - मव्याबाधं विशोकभयशङ्कम्।
काष्ठागतसुखविद्या-विभवं विमलं भजन्ति दर्शनशरणाः ॥ 40 ॥

अन्वयार्थ : (**दर्शनशरणाः**) सम्यग्दृष्टि जीव (**अजरम्**) बुढ़ापा रहित (**अरुजम्**) रोगरहित (**अक्षयम्**) क्षयरहित (**अव्याबाधम्**) बाधारहित (**विशोकभयशङ्कम्**) शोक, भय तथा शंकारहित (**काष्ठागतसुखविद्या विभवम्**) अनंत सुख और ज्ञान के वैभव से सहित तथा (**विमलम्**) द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्मरहित (**शिवम्**) मोक्ष को भी (**भजन्ति**) प्राप्त होते हैं।

भावार्थ :जो सम्यग्दर्शन की शरण में हैं, वे उस शिवपद को भी पहुँचते हैं, जो जरा से रहित है, रोग से मुक्त है, अविनाशी है तथा विविध प्रकार की बाधाओं / व्यवधानों का प्रवेश जहाँ निषिद्ध है, जो शोक से मुक्त है, भय से रहित है, शंका से शून्य है, सुख और ज्ञान की विभूति के परमोत्कर्ष को लिए हुए है और जहाँ द्रव्य-भावरूप कर्मकल्मष का अभाव है।

सम्यग्दर्शन की महिमा का उपसंहार

देवेन्द्रचक्रमहिमानममेयमानम्,
राजेन्द्रचक्रमवनीन्द्रशिरोऽर्चनीयम्।
धर्मेन्द्रचक्रमधरीकृतसर्वलोकं,
लब्ध्वा शिवं च जिनभक्तिरुपैति भव्यः ॥ 41 ॥

अन्वयार्थ : (**जिनभक्तिः**) जिनेन्द्रदेव का भक्त (**भव्यः**) सम्यग्दृष्टि पुरुष (**अमेय-मानम्**) अपरिमित प्रतिष्ठा अथवा ज्ञान से सहित (**देवेन्द्रचक्र महिमानम्**) इन्द्रसमूह की महिमा को (**अवनीन्द्रशिरोऽर्चनीयम्**) राजाओं के मस्तक से पूजनीय (**राजेन्द्रचक्रम्**) चक्रवर्ती के चक्ररत्न को (**च**) और (**अधरीकृत सर्वलोकम्**) समस्त लोक को नीचा करने वाले (**धर्मेन्द्रचक्रम्**) तीर्थंकर के धर्मचक्र को (**लब्ध्वा**) प्राप्त कर (**शिवम्**) मोक्ष को (**उपैति**) प्राप्त होता है।

भावार्थ : जिनेन्द्र भगवान् में भक्ति रखने वाला भव्य सम्यग्दृष्टि देवेन्द्रों के समूह की अपरिमित महिमा को, राजाओं द्वारा नमस्कृत चक्रवर्तियों के चक्ररत्न को तथा समस्त लोक को अपना उपासक बनाने वाले धर्मेन्द्र चक्र को उपलब्ध कर शिवपद को प्राप्त करता है।

सम्यग्ज्ञानाधिकार

सम्यग्ज्ञान का लक्षण

अन्यूनमनतिरिक्तं, याथातथ्यं विना च विपरीतात्।
निःसंदेहं वेद, यदाहुस्तज्ज्ञानमागमिनः ॥ 42 ॥

अन्वयार्थ : (**यत्**) जो ज्ञान [**वस्तुस्वरूपम्**] वस्तु के स्वरूप को (**अन्यूनम्**) न्यूनतारहित (**अनतिरिक्तम्**) अधिकता रहित (**विपरीतात् विना**) विपरीतता रहित (**च**) और (**निःसंदेहं**) संदेह रहित (**यथातथ्यम्**) जैसा का तैसा (**वेद**) जानता है (**तत्**) उस ज्ञान को (**आगमिनः**) गणधर या श्रुतकेवली (**ज्ञानम्**) सम्यग्ज्ञान (**आहुः**) कहते हैं।

भावार्थ : यथावस्थित वस्तुस्वरूप को, वस्तु के व्यक्तित्व को जो न्यूनता और विकलता से रहित, अतिरिक्तता से रहित, सन्देह से रहित यथारूप जानता

है अथवा उस रूप जो उसका जानना है, आगमज्ञ उसे सम्यग्ज्ञान कहते हैं।

प्रथमानुयोग का लक्षण

प्रथमानुयोगमर्थाख्यानं चरितं पुराणमपि पुण्यम्।
बोधिसमाधिनिधानं, बोधति बोधः समीचीनः ॥43॥

अन्वयार्थ : (**समीचीनः बोधः**) सम्यक् श्रुतज्ञान (**अर्थाख्यानम्**) परमार्थ विषय का अर्थ करने वाले (**चरितम्**) एक पुरुषाश्रित कथा (**अपि**) और (**पुराणम्**) त्रेशठशलाका पुरुषों सम्बन्धी कथारूप (**पुण्यम्**) पुण्यवर्धक तथा (**बोधिसमाधि निधानम्**) बोधि और समाधि के निधान (**प्रथमानुयोगम्**) प्रथमानुयोग को (**बोधति**) जानता है।

भावार्थ : जिस ग्रन्थ में चारों पुरुषार्थों, किसी एक महापुरुष के चरित्र और त्रेशठशलाका पुरुषों के चरित्र का वर्णन है, उन कथा चरित्र और पुराण कहे जाने वाले ग्रन्थों को प्रथमानुयोग कहते हैं। उनके पठन, मनन वा उपदेश आदि से पुण्य तथा बोधि और समाधि प्राप्त होती है। यह प्रथमानुयोग सम्यग्ज्ञान का विषय है। आदिपुराण, हरिवंशपुराण, प्रद्युम्न चरित्र आदि शास्त्र प्रथमानुयोग के शास्त्र हैं।

करणानुयोग का लक्षण

लोकालोकविभक्तेर्युगपरिवृत्तेश्चतुर्गतीनां च।
आदर्शमिव तथामति रवैति करणानुयोगं च ॥44॥

अन्वयार्थ : (**तथा**) प्रथमानुयोग की तरह (**मतिः**) जो मननरूप श्रुतज्ञान, (**लोकालोकविभक्तेः**) लोक और अलोक के विभाग को (**युग परिवृत्तेः**) युगों के परिवर्तन (**च**) और (**चतुर्गतीनाम्**) चारों गतियों के लिए (**आदर्शम्**) दर्पण के (**इव**) समान (**करणानुयोगम्**) करणानुयोग को भी (**अवैति**) जानता है।

भावार्थ : जैसे दर्पण वस्तु को अपने में जैसा का तैसा दिखा देता है, उसी प्रकार जो शास्त्र लोक-अलोक के विभाग को, उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल के परिवर्तन को तथा चारों गतियों को जैसा का तैसा जानता है, उसे

करणानुयोग कहते हैं। यह अनुयोग सम्यग्ज्ञान का विषय है। त्रिलोकसार, तिलोयपण्णत्ति आदि शास्त्र करणानुयोग के शास्त्र हैं।

चरणानुयोग का लक्षण

गृहमेध्यनगाराणां, चारित्रोत्पत्तिवृद्धिरक्षाङ्गम्।
चरणानुयोगसमयं, सम्यग्ज्ञानं विजानाति ॥45॥

अन्वयार्थ : (**सम्यग्ज्ञानम्**) भावश्रुतरूप सम्यग्ज्ञान (**गृहमेध्य-नगाराणां**) गृहस्थ और मुनियों के (**चारित्रोत्पत्तिवृद्धिरक्षाङ्गम्**) चारित्र की उत्पत्ति, वृद्धि और रक्षा के कारणभूत (**चरणानुयोगसमयम्**) चरणानुयोग शास्त्र को (**विजानाति**) जानता है।

भावार्थ : गृहस्थों और गृहत्यागी मुनियों के चरित्र के उद्भव, उसके विकास और उसकी रक्षा के अंगस्वरूप/कारणभूत अथवा इन तीन अंगों को लिए हुए जो शास्त्र आत्मानुसंधान की दिशा में प्रवृत्त हैं, उसे चरणानुयोग कहते हैं। यह भी सम्यग्ज्ञान का एक अंग है। मूलाचार, अनगार धर्मामृत, पुरुषार्थसिद्ध्युपाय आदि चरणानुयोग के शास्त्र हैं।

द्रव्यानुयोग का लक्षण

जीवाजीवसुतत्त्वे, पुण्यापुण्ये च बन्धमोक्षौ च।
द्रव्यानुयोगदीपः, श्रुतविद्यालोकमातनुते ॥46॥

अन्वयार्थ : (**द्रव्यानुयोगदीपः**) द्रव्यानुयोगरूपी दीपक (**जीवाजीव सुतत्त्वे**) जीव और अजीव प्रमुख तत्त्वों को (**पुण्यापुण्ये**) पुण्य और पाप को (**बन्धमोक्षौ**) बन्ध और मोक्ष को (**च**) चकार से आस्रव, संवर और निर्जरा को (**श्रुतविद्यालोकम्**) भावश्रुतज्ञान रूप प्रकाश को फैलाता हुआ (**आतनुते**) विस्तृत करता है।

भावार्थ : जो जीव और अजीव तत्त्वों को, पुण्य और पाप को तथा बन्ध और मोक्ष को और बन्ध के कारण-आस्रव तथा मोक्ष के कारण-संवर-निर्जरा को प्रकाशित/आलोकित करने वाला दीपक है, वह द्रव्यानुयोग है। षट्खण्डागम, कषायपाहुड, गोम्मटसार, द्रव्यसंग्रह, समयसार आदि द्रव्यानुयोग के शास्त्र हैं।

सम्यक्चारित्राधिकार

चारित्र कौन धारण करता है ?

मोहतिमिरापहरणे, दर्शनलाभादवाप्तसंज्ञानः।
रागद्वेषनिवृत्त्यै, चरणं प्रतिपद्यते साधुः ॥47॥

अन्वयार्थ : (**मोहतिमिरापहरणे**) मोहरूपी अन्धकार के दूर होने पर (**दर्शनलाभात्**) सम्यग्दर्शन की प्राप्ति से (**अवाप्तसंज्ञानः**) जिसे सम्यग्ज्ञान प्राप्त हुआ है ऐसा (**साधुः**) भव्य जीव (**रागद्वेषनिवृत्त्यै**) रागद्वेष की निवृत्ति के लिए (**चरणम्**) सम्यक् चारित्र को (**प्रतिपद्यते**) प्राप्त होता है।

भावार्थ : जिस प्रकार बादल के हट जाने पर धूप और आकाश दोनों एक साथ प्रकट होते हैं, उसी प्रकार दर्शनमोहनीय कर्म के उपशम, क्षय या क्षयोपशम होने से सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान एक साथ उत्पन्न होते हैं। जिसके ये दोनों प्रकट हो जाते हैं, वह भव्य अपने रागद्वेष को दूर करने के लिए बुद्धिपूर्वक सम्यक्चारित्र धारण करता है।

रागद्वेष की निवृत्ति से चारित्रोत्पत्ति

रागद्वेषनिवृत्तेर्हिंसादिनिवर्त्तना कृता भवति।
अनपेक्षितार्थवृत्तिः, कः पुरुषः सेवते नृपतीन् ॥48॥

अन्वयार्थ : (**रागद्वेषनिवृत्तेः**) रागद्वेष की निवृत्ति होने से (**हिंसादि निवर्तना**) हिंसादि पापों से निवृत्ति (**कृता भवति**) स्वयमेव हो जाती है [**यतः**] क्योंकि (**अनपेक्षितार्थवृत्तिः**) जिसे किसी प्रयोजनरूप फल की प्राप्ति अभिलषित नहीं है ऐसा (**कःपुरुषः**) कौन पुरुष (**नृपतीन् सेवते**) राजाओं की सेवा करता है? अर्थात् कोई नहीं।

भावार्थ : अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह की आचरण-रूप आराधना क्यों की जाती है? इसलिए कि राग-द्वेष की दुष्प्रवृत्ति से निवृत्त हुआ जा सके, उससे छुट्टी मिल सके। संसार में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है, जो बिना किसी प्रयोजन के कोई काम करता हो। लोग राजाओं की सेवा क्यों करते हैं? स्पष्टतः अर्थोपार्जन के लिए।

सम्यक्चारित्र का लक्षण

हिंसानृतचौर्य्येभ्यो, मैथुनसेवापरिग्रहाभ्यां च।
पापप्रणालिकाभ्यो, विरतिः संज्ञस्य चारित्रम्॥ 49॥

अन्वयार्थ : (**पापप्रणालिकाभ्यः**) पाप के पनाले स्वरूप (**हिंसानृत चौर्य्येभ्यः**) हिंसा, झूठ, चोरी से (**च**) और (**मैथुनसेवा-परिग्रहाभ्याम्**) कुशील और परिग्रह से (**विरतिः**) विरक्त होना (**संज्ञस्य**) सम्यग्ज्ञानी का (**चारित्रम्**) चारित्र है।

भावार्थ : हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्म तथा परिग्रह पाप के स्त्रोत हैं। इनसे विरक्त होना सम्यग्ज्ञानी का चारित्र है।

चारित्र के भेद और उपासक

सकलं विकलं चरणं, तत्सकलं सर्वसङ्गविरतानाम्।
अनगाराणां विकलं, सागाराणां ससङ्गानाम् ॥50॥

अन्वयार्थ : (**तत्**) वह (**चरणम्**) चारित्र (**सकलम्**) सकल (**च**) और (**विकलम्**) विकल दो प्रकार है, उनमें से (**सर्वसङ्ग-विरतानाम्**) समस्त परिग्रहों से विरक्त (**अनगाराणाम्**) मुनियों के (**सकलम्**) सकलचारित्र होता है (**च**) और (**ससङ्गानाम्**) गृह आदि परिग्रह सहित (**सागाराणाम्**) गृहस्थों के (**विकलम्**) विकलचारित्र होता है।

भावार्थ :चारित्र के दो भेद हैं, सकल और विकल। सकल चारित्र में बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रह का परिपूर्ण त्याग होता है और विकल में अंशतः। सकल का परिपालन गृहत्यागी (मुनि) करते हैं और विकल का श्रावक/गृहस्थ, इन्हें क्रमशः महाव्रत और अणुव्रत भी कहा जाता है।

विकलचारित्र के भेद

गृहिणां त्रेधा तिष्ठत्यणु-गुण-शिक्षाव्रतात्मकं चरणम्।
पञ्चत्रिचतुर्भेदं त्रयं यथासंख्य-माख्यातम् ॥51॥

अन्वयार्थ : (**गृहिणाम्**) गृहस्थों का (**चरणम्**) चारित्र (**अणुगुण-शिक्षा व्रतात्मकम्**) अणुव्रत, गुणव्रत और शिक्षाव्रत रूप (**त्रेधा**) तीन प्रकार (**तिष्ठति**) होता है [**तत्**] वह (**त्रयम्**) तीनों ही चारित्र (**यथासंख्यम्**)

क्रम से (**पञ्च-त्रिचतुर्भेदम्**) पाँच, तीन और चार भेद रूप (**आख्यातम्**) कहे गये हैं।

भावार्थ : गृहस्थों का चारित्र तीन प्रकार का है। यह पाँच अणुव्रतों, तीन गुणव्रतों तथा चार शिक्षाव्रतों रूप है।

अणुव्रताधिकार

अणुव्रत का लक्षण

प्राणातिपातवितथव्याहारस्तेयकाममूर्च्छाभ्यः ।
स्थूलेभ्यः पापेभ्यो, व्युपरमणमणुव्रतं भवति ॥52॥

अन्वयार्थ : (प्राणातिपातवितथव्याहारस्तेयकाममूर्च्छाभ्यः) हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन (**स्थूलेभ्यः**) स्थूल (**पापेभ्यः**) पापों से (**व्युपरमणम्**) विरत होना (**अणुव्रतम्**) अणुव्रत (**भवति**) होता है।

भावार्थ :अणुव्रत का स्वरूप स्थूल प्राण-घात से, स्थूल असत्य-भाषण से, स्थूल चोरी से, स्थूल काम से और स्थूल ममता रूप मूर्च्छा से, इन पाँच स्थूल पापों से विरक्त होना अर्थात् स्थूल पापों का त्याग करना अणुव्रत कहलाता है।

अहिंसाणुव्रत का लक्षण

सङ्कल्पात्कृतकारितमननाद्योगत्रयस्य चरसत्त्वान्।
न हिनस्ति यत्तदाहुः, स्थूलवधाद्विरमणं निपुणाः ॥53॥

अन्वयार्थ : (**यत्**) जो (**योगत्रयस्य**) मन, वचन और काय के (**कृतकारितमननात्**) कृत, कारित और अनुमोदना रूप (**सङ्कल्पात्**) संकल्प से (**चरसत्त्वान्**) त्रस जीवों को (**न हिनस्ति**) नहीं मारता है (**तत्**) उसकी उस क्रिया को (**निपुणाः**) गणधर आदिक (**स्थूलवधात्**) स्थूलहिंसा से (**विरमणम्**) विरक्त होना अर्थात् अहिंसाणुव्रत (**आहुः**) कहते हैं।

भावार्थ :मन से, वचन से तथा काय से जानबूझकर हिंसा न तो करना, न करवाना और न किए जाने का अनुमोदन/समर्थन करना, अहिंसाणुव्रत का परिपालन है।

अहिंसाणुव्रत के अतिचार

छेदनबन्धनपीडनमतिभारारोपणं व्यतीचाराः।
आहारवारणापि च, स्थूलवधाद्व्युपरतेः पञ्च ॥54॥

अन्वयार्थ : (**स्थूलवधाद्व्युपरतेः**) स्थूलवध से विरत के (**छेदनबन्धनपीडनम्**) छेदना, बांधना, पीड़ा देना (**अतिभारारोपणम्**) अधिक भार लादना (**अपि**) और (**आहार-वारणा**) आहार का रोकना (**एते**) ये पाँच (**व्यतीचाराः**) अतिचार हैं।

भावार्थ : अंग-छेदन, बन्धन, पीड़न, अधिक भार लादना तथा होते हुए यथावश्यक आहार न देना या उससे किसी प्राणी को वंचित रखना अहिंसा अणुव्रत के अतिचार हैं। अतिचार निर्धारित व्रत-सीमा के उल्लंघन को कहते हैं।

सत्याणुव्रत का लक्षण

स्थूलमलीकं न वदति, न परान् वादयति सत्यमपि विपदे।
यत्तद्वदन्ति सन्तः, स्थूलमृषावादवैरमणम् ॥55॥

अन्वयार्थ : (**यत्**) जो (**स्थलूम्**) स्थूल (**अलीकम्**) झूठ को (**न वदति**) न तो आप बोलता है (**च**) और (**न**) न (**परान्**) दूसरों से (**वादयति**) बुलवाता है तथा (**विपदे**) दूसरों की आपत्ति के लिए (**सत्यम्**) सत्य (**अपि**) भी (**न वदति**) न स्वयं बोलता है [**च**] और (**न परान् वादयति**) न दूसरों से बुलवाता है (**तत्**) उसकी उस क्रिया को (**सन्तः**) महापुरुष (**स्थूलमृषावादवैरमणम्**) स्थूल असत्य का त्याग अर्थात् सत्याणुव्रत (**वदन्ति**) कहते हैं।

भावार्थ : जिन वचनों के बोलने पर राजा आदिक से अपना, दूसरे का या अन्य किसी का वध आदिक होने लगे, ऐसा स्थूल झूठ न तो स्वयं बोलना, न दूसरों से बुलवाना और जिससे अन्य के प्राणों का घात हो ऐसा 'यह चोर है' इत्यादि भी न स्वयं बोलना, न दूसरों से बुलवाना सत्याणुव्रत कहलाता है।

सत्याणुव्रत के अतिचार

परिवादरहोभ्याख्या, पैशुन्यं कूटलेखकरणं च।
न्यासापहारितापि च, व्यतिक्रमाः पञ्च सत्यस्य ॥56॥

अन्वयार्थ : (**परिवाद**) मिथ्योपदेश (**रहोभ्याख्या**) रहोभ्याख्यान (**पैशुन्यम्**) पैशुन्य (**कूटलेखकरणम्**) कूटलेख लिखना (**अपि च**) और (**न्यासापहारिता**) धरोहर को हड़प करने के वचन कहना [**एते**] ये (**पञ्च**) पाँच (**सत्यस्य**) सत्याणुव्रत के (**व्यतिक्रमाः**) अतिचार [**सन्ति**] हैं।

भावार्थ : अपशब्द बोलना, गोपनीय तथ्यों को प्रकट करना, चुगली करना, झूठे-जाली दस्तावेज बनाना या प्रामाणिक दस्तावेजों में हेर-फेर करना और दूसरों की अमानत/धरोहर को अपहरण करने के वचन कहना, ये सत्याणुव्रत के अतिचार हैं।

अचौर्याणुव्रत का लक्षण

निहितं वा पतितं वा, सुविस्मृतं वा परस्वमविसृष्टं।
न हरति यन्न च दत्ते, तदकृशचौर्य्यादुपारमणम् ॥57॥

अन्वयार्थ : (**यत्**) जो (**निहितम्**) रखी हुई (**पतितम्**) गिरी हुई (**वा**) और (**सुविस्मृतम्**) भूली हुई (**परस्वम्**) अन्य की वस्तु को (**अविसृष्टम्**) बिना दिए (**न हरति**) नहीं लेता है (**च**) और [**अन्यस्मै**] दूसरे को भी (**न दत्ते**) नहीं देता है (**तत्**) उसकी वह क्रिया (**अकृशचौर्यात्**) स्थूल चोरी से (**उपारमणम्**) परित्याग अर्थात् अचौर्याणुव्रत है।

भावार्थ : दूसरों की भूली या रखी और अन्य किसी स्थिति में आरक्षित सम्पत्ति को बिना दिए न लेना और न दूसरों को देना, अचौर्याणुव्रत कहलाता है।

अचौर्याणुव्रत के अतिचार

चौरप्रयोगचौरार्था- दानविलोपसदृशसन्मिश्राः ।
हीनाधिकविनिमानं, पञ्चास्तेये व्यतीपाताः ॥58॥

अन्वयार्थ : (**चौरप्रयोगचौरार्थादानविलोपसदृशसन्मिश्राः**) चौरप्रयोग, चौरार्थादान, विलोप, सदृशसन्मिश्र (**च**) और (**हीनाधिक विनिमानम्**) हीनाधिक विनिमान [**एते**] ये (**पंच**) पाँच (**अस्तेये**) अचौर्याणुव्रत के (**व्यतीपाताः**) अतिचार [**सन्ति**] हैं।

भावार्थ : चोरी में प्रवृत्त होने में सहयोग देना, यह जानते हुए भी कि 'फलाँ माल चोरी का है' खरीदना, राजा के कानून की अवहेलना करते हुए वस्तुओं की खरीद करना। अनुचित नफे के लिए असली वस्तु में नकली वस्तु की मिलावट करके असली बताकर बेचना, अचौर्याणुव्रत के अतिचार हैं।

ब्रह्मचर्याणुव्रत का लक्षण

न तु परदारान् गच्छति, न परान् गमयति च पापभीतेर्यत्।
सा परदारनिवृत्तिः, स्वदारसन्तोषनामापि ॥59॥

अन्वयार्थ : (**यत्**) जो (**पापभीतेः**) पाप के भय से (**परदारान्**) परस्त्रियों के प्रति (**न तु**) न तो (**गच्छति**) स्वयं गमन करता है (**च**) और (**न परान्**) न दूसरों को (**गमयति**) गमन कराता है (**सा**) वह (**परदार-निवृत्तिः**) परस्त्रीत्याग (**अपि**) तथा (**स्वदारसन्तोषनाम**) स्वदारसंतोष नाम का अणुव्रत है।

भावार्थ : पापभय से परनारी का न तो स्वयं सेवन करना, न अन्यों को तदनुरूप प्रेरित करना परदारनिवृत्ति, स्वदारसंतोष अथवा ब्रह्मचर्याणुव्रत है। इस व्रत के नाम तथा नामान्तरों में से भी व्रत का आशय स्पष्ट झलक जाता है।

ब्रह्मचर्याणुव्रत के अतिचार

अन्यविवाहाकरणानङ्गक्रीडा-विटत्व-विपुलतृषः ।
इत्वरिकागमनं चास्मरस्य पञ्च व्यतीचाराः ॥60॥

अन्वयार्थ : (**अन्यविवाहाकरणानङ्गक्रीडा-विटत्व-विपुलतृषः**) अन्य विवाहाकरण, अनंगक्रीड़ा, विटत्व, विपुलतृषा [**च**] और (**इत्वरिका-गमनं**) इत्वरिकागमन [**एते**] ये (**पञ्च**) पाँच (**अस्मरस्य**) ब्रह्मचर्याणुव्रत के (**व्यतीचारः**) अतिचार [**सन्ति**] हैं।

भावार्थ : दूसरों के (अपने तथा अपने आश्रितों को छोड़) विवाह में सहयोग देना, स्वाभाविक अंगों को छोड़ अन्य अंगों द्वारा काम-क्रीड़ा करना, शरीर तथा शब्द से कुचेष्टा करना, काम-भोग की अदम्य लालसा रखना तथा व्यभिचारिणी स्त्री के घर आना-जाना, ये पाँच ब्रह्मचर्याणुव्रत के अतिचार हैं।

परिग्रहपरिमाणाणुव्रत का स्वरूप

धनधान्यादिग्रन्थं, परिमाय ततोऽधिकेषु निःस्पृहता।
परिमितपरिग्रहः स्यादिच्छापरिमाणनामापि ॥61॥

अन्वयार्थ : (**धनधान्यादिग्रन्थम्**) धन-धान्यादि का परिग्रह (**परिमाय**) परिमाणकर (**ततः**) उनसे (**अधिकेषु**) अधिक में (**निःस्पृहता**) इच्छा रहित होना (**परिमितपरिग्रहः**) परिमितपरिग्रह (**अपि**) अथवा (**इच्छापरिमाणनाम**) इच्छापरिमाण नामक अणुव्रत (**स्यात्**) होता है।

भावार्थ : क्षेत्र (खेत), वास्तु (मकान आदि), हिरण्य (रुपया, चाँदी आदि), स्वर्ण (सोना या सुवर्ण के जेवर), धन (गाय आदि), धान्य (अनाज), दासी, दास, कुप्य (वस्त्र) और भाण्ड (बर्तन) इन दशों परिग्रहों का मैं 'अमुक इतना रखूँगा और अमुक इतना' ऐसा परिमाण करके उससे अधिक की इच्छा नहीं करना परिग्रह परिमाणाणुव्रत कहलाता है।

परिग्रहपरिमाणाणुव्रत के अतिचार

अतिवाहनातिसंग्रह विस्मयलोभातिभारवहनानि।
परिमितपरिग्रहस्य च, विक्षेपाः पञ्च लक्ष्यन्ते ॥62॥

अन्वयार्थ : (अतिवाहनातिसंग्रह विस्मयलोभातिभारवहनानि) अतिवाहन, अतिसंग्रह, अतिविस्मय, अतिलोभ और अतिभारवहन **[एते]** ये **(पञ्च)** पाँच **(परिमित-परिग्रहस्य च)** परिग्रह परिमाणाणुव्रत के **(विक्षेपाः)** अतिचार **(लक्ष्यन्ते)** निश्चित किए जाते हैं।

भावार्थ : आवश्यकता से अधिक वाहनों को रखना, अधिक वस्तुओं का संग्रह करना, दूसरों के लाभादि को देखकर आश्चर्य करना, अधिक लोभ करना और घोड़े आदि को उनकी शक्ति से अधिक जोतना या उन पर अधिक बोझा लादना, यह पाँच परिग्रह परिमाणाणुव्रत के अतिचार हैं।

अणुव्रत धारण का फल

पञ्चाणुव्रतनिधयो, निरतिक्रमणाः फलन्ति सुरलोकं।
यत्रावधिरष्टगुणा, दिव्यशरीरं च लभ्यन्ते ॥63॥

अन्वयार्थ : (निरतिक्रमणाः) अतिचार रहित **(पञ्चाणुव्रतनिधयः)** पाँच अणुव्रत रूपी निधियाँ **(सुरलोकम्)** स्वर्गलोक को **(फलन्ति)** फलती हैं, **(यत्र)** जिस स्वर्गलोक में **(अवधिः)** अवधि ज्ञान **(अष्टगुणाः)** आठ ऋद्धियाँ **(च)** और **(दिव्यशरीरम्)** सप्त धातु रहित सुन्दर वैक्रियिक शरीर **(लभ्यन्ते)** प्राप्त होते हैं।

भावार्थ : अतिचार रहित अणुव्रतों का पालन निधि रूप है। इनके निरतिचार अनुपालन से स्वर्गलोक मिलता है, वह स्वर्गलोक जहाँ अवधिज्ञान है, अष्टगुण (अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व) तथा दिव्य वैक्रियक देह सहज प्राप्त होते हैं।

अणुव्रतधारियों में प्रसिद्ध व्यक्तियों के नाम

मातङ्गो धनदेवश्च, वारिषेणस्ततः परः।
नीली जयश्च सम्प्राप्ताः, पूजातिशयमुत्तमम् ॥64॥

अन्वयार्थ : अणुव्रत धारियों में (**मातङ्गः**) यमपाल नाम का चाण्डाल, (**धनदेवः**) धनदेव (**वारिषेणः**) वारिषेण (**नीली**) वणिकपुत्री नीली (**च**) और (**जयः**) जयकुमार क्रम से (**उत्तमम्**) उत्तम (**पूजातिशयम्**) पूजा के अतिशय को (**सम्प्राप्ताः**) प्राप्त हुए हैं।

भावार्थ :अणुव्रत के धारण करने वालों में अहिंसाणुव्रत में यमपाल नाम का चाण्डाल, सत्याणुव्रत में सेठ धनदेव, अचौर्याणुव्रत में श्रेणिक पुत्र वारिषेण, ब्रह्मचर्याणुव्रत में वणिक पुत्री नीली और परिग्रहपरिमाणाणुव्रत में राजपुत्र जयकुमार प्रसिद्ध हुए हैं।

पाँचों पापों में प्रसिद्ध व्यक्ति

धनश्रीसत्यघोषौ च, तापसारक्षकावपि।
उपाख्येयास्तथा श्मश्रुनवनीतो यथाक्रमम् ॥65॥

अन्वयार्थ : (**धनश्रीसत्यघोषौ च**) धनश्री और सत्यघोष (**तापसा-रक्षकौ**) तपस्वी और कोतवाल (**अपि**) और (**श्मश्रुनवनीतः**) श्मश्रुनवनीत ये पाँच (**यथाक्रमम्**) क्रम से हिंसादि पापों में (**उपाख्येयाः**) उपाख्यान करने के योग्य हैं-दृष्टान्त देने के योग्य हैं।

भावार्थ : धनश्री नामक सेठानी, सत्यघोष अर्थात् श्रीभूति पुरोहित, अपसर नामक तपस्वी, यमदण्ड कोतवाल और श्मश्रुनवनीत (लुब्धदत्त नामक वैश्य) क्रमशः हिंसा, असत्य, चौर्य, कुशील और परिग्रह को लेकर प्रसिद्धि को प्राप्त हुए हैं।

श्रावक के आठ मूलगुण

मद्यमांसमधुत्यागैः, सहाणुव्रतपञ्चकम्।
अष्टौ मूलगुणानाहुर्गृहिणां श्रमणोत्तमाः ॥66॥

अन्वयार्थ : (**श्रमणोत्तमाः**) मुनियों में उत्तम गणधरादिक देव (**मद्य-मांसमधुत्यागैः सह**) मद्य त्याग, माँस त्याग और मधुत्याग के साथ (**अणुव्रतपञ्चकम्**) पाँच अणुव्रतों को (**गृहिणां**) गृहस्थों के (**अष्टौ**)

आठ (**मूलगुणान्**) मूलगुण (**आहुः**) कहते हैं।

भावार्थ :मद्य, माँस, मधु, हिंसा, झूठ, चौर्य, कुशील तथा परिग्रह इन आठों के त्याग को श्रावक के अष्ट मूलगुण कहे गये हैं, अन्य शब्दों में तीन मकारों का त्याग और पाँच अणुव्रतों के परिपालन से श्रावक का व्यक्तित्व बनता है।

गुणव्रताधिकार

गुणव्रतों के नाम

दिग्व्रतमनर्थदण्डव्रतं च भोगोपभोगपरिमाणम्।
अनुबृंहणाद्गुणानामाख्यान्ति गुणव्रतान्यार्याः ॥67॥

अन्वयार्थ : (**आर्याः**) तीर्थंकरदेव आदि उत्तम पुरुष (**गुणानाम्**) मूलगुणों की (**अनुवृंहणात्**) वृद्धि करने के कारण (**दिग्व्रतम्**) दिग्व्रत को (**अनर्थदण्डव्रतम्**) अनर्थदण्ड व्रत को (**च**) और (**भोगोपभोगपरिमाणम्**) भोगोपभोगपरिमाणव्रत को (**गुणव्रतानि**) गुणव्रत (**आख्यान्ति**) कहते हैं।

भावार्थ : प्रथम दिग्व्रत, द्वितीय अनर्थदण्डव्रत और तृतीय भोगोपभोग परिमाणव्रत, इन तीनों के द्वारा पूर्वोक्त अष्टमूलगुण निर्मल और पुनीत-पावन बनते हैं, इसलिए पुरुषजन इन्हें 'गुणव्रत' के नाम से पहचानते/जानते हैं। इनमें सबसे पहले दिग्व्रत का क्या स्वरूप है ? यह किस प्रकार से धारण किया जाता है ? इन्हीं बातों को बतलाते हैं-

दिग्व्रत का लक्षण

दिग्वलयं परिगणितं, कृत्वातोऽहं बहिर्न यास्यामि।
इति सङ्कल्पो दिग्व्रतमामृत्यणुपापविनिवृत्त्यै ॥68॥

अन्वयार्थ : (**आमृति**) मरणपर्यन्त (**अणुपापविनिवृत्त्यै**) सूक्ष्म पापों की निवृत्ति के लिए (**दिग्वलयं**) दिशाओं के समूह को (**परिगणितं**) मर्यादा सहित (**कृत्वा**) करके (**अतः**) इससे (**बहिः**) बाहर (**अहम्**) मैं (**न**) नहीं (**यास्यामि**) जाऊँगा (**इति**) इस प्रकार (**सङ्कल्पः**) संकल्प या प्रतिज्ञा करना (**दिग्व्रतम्**) दिग्व्रत है।

भावार्थ : सूक्ष्म पापों से बचने के लिए दशों दिशाओं में गमनागमन की मर्यादा निश्चित करना और तदनुसार जीवन-भर उसके बाहर न जाना दिग्व्रत है।

दिग्व्रत की मर्यादा का प्रकार

मकराकरसरिदटवीगिरिजनपदयोजनानि मर्यादाः।
प्राहुर्दिशां दशानां, प्रतिसंहारे प्रसिद्धानि ॥69॥

अन्वयार्थ : (**दशानाम्**) दशों (**दिशाम्**) दिशाओं के (**प्रतिसंहारे**) परिमाण में (**प्रसिद्धानि**) प्रसिद्ध-प्रसिद्ध (**मकराकर**) समुद्र, (**सरित्**) नदी, (**अटवी**) पहाड़ी-जंगल, (**गिरि**) पर्वत, (**जनपद**) शहर और (**योजनानि**) योजन को (**मर्यादाः**) मर्यादा-सीमा (**प्राहुः**) कहते हैं।

भावार्थ : दिग्व्रत में दशों दिशाओं में सुप्रसिद्ध समुद्र, नदी, पर्वत, शहर और योजन आदि को सीमांकन के लिए निश्चित किया जाता है, यथा-उत्तर में हिमालय, दक्षिण में कन्याकुमारी इत्यादि।

दिग्व्रत की मर्यादा के बाहर अणुव्रतों के महाव्रतपना

अवधेर्बहिरणुपापप्रतिविरतेर्दिग्व्रतानि धारयताम्।
पञ्चमहाव्रतपरिणतिमणुव्रतानि प्रपद्यन्ते ॥70॥

अन्वयार्थ : (**दिग्व्रतानि**) दिग्व्रतों को (**धारयताम्**) धारण करने वाले पुरुषों के (**अणुव्रतानि**) अणुव्रत, (**अवधेः**) की हुई मर्यादा के (**बहिः**) बाहर (**अणुपापप्रतिविरतेः**) सूक्ष्म पापों के भी त्याग से (**पञ्चमहाव्रत-परिणतिम्**) पाँच महाव्रतों की सदृश्यता को (**प्रपद्यन्ते**) प्राप्त होते हैं।

भावार्थ : अंकित मर्यादा से बाहर दिग्व्रती के स्थूल/सूक्ष्म दोनों प्रकार के पाँचों पापों का सर्वथा त्याग हो जाता है, तदनुसार उस अपेक्षा से उसके अणुव्रत, महाव्रत जैसे हो जाते हैं, किन्तु इसके अंतरंग में घटित न होने से कषायों की सत्ता बनी रहती है, तदनुसार इन्हें परमार्थ से महाव्रत नहीं माना जा सकता।

उपचार की दृष्टि से महाव्रत

प्रत्याख्यानतनुत्वात्, मन्दतराश्चरणमोहपरिणामाः।
सत्त्वेन दुरवधारा, महाव्रताय प्रकल्प्यन्ते ॥71॥

अन्वयार्थ : (**प्रत्याख्यानतनुत्वात्**) प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ का मन्द उदय होने से (**मन्दतराः**) अत्यन्त मंद अवस्था को प्राप्त हुए यहाँ तक कि (**सत्त्वेन दुरवधाराः**) जिनके अस्तित्त्व का निर्धारण करना भी

कठिन है, ऐसे (**चरणमोहपरिणामाः**) चारित्रमोह के परिणाम (**महाव्रताय**) महाव्रत के व्यवहार के लिए (**प्रकल्प्यन्ते**) उपचरित होते हैं–कल्पना किए जाते हैं।

भावार्थ : दिग्व्रती के महाव्रतों की घातक प्रत्याख्यानावरण कषायें इतनी मंद हो जाती हैं कि उसके अस्तित्व की प्रतीति ही नहीं होती, इसलिए उसके अणुव्रत उपचार से महाव्रत प्रतीत होते हैं, तथापि उक्त कषायों की उपस्थिति के कारण उन्हें महाव्रत कहना संभव नहीं है।

महाव्रत का लक्षण

पञ्चानां पापानां हिंसादीनां मनोवचःकायैः।
कृतकारितानुमोदैस्त्यागस्तु महाव्रतं महताम् ॥72॥

अन्वयार्थ : (**हिंसादीनाम्**) हिंसादिक (**पञ्चानाम्**) पाँचों (**पापानाम्**) पापों का (**मनोवचःकायैः**) मन, वचन, काय से तथा (**कृतकारितानुमोदैः**) कृत, कारित, अनुमोदना से (**त्यागः**) त्याग करना (**महतां**) प्रमत्तविरत आदि गुणस्थानवर्ती महापुरुषों का (**महाव्रतम्**) महाव्रत [**भवति**] होता है।

भावार्थ :मन, वचन, काय तथा कृत, कारित, अनुमोदना इन नव कोटि संकल्पों से हिंसा आदि पाँच पापों का सर्वथा त्याग महाव्रत है। यह महान् आत्माओं के लिए ही संभव है।

दिग्व्रत के अतिचार

ऊर्ध्वाधस्तात्तिर्यग्व्यतिपाताः क्षेत्रवृद्धि-रवधीनां।
विस्मरणं दिग्विरतेरत्याशाः पञ्च मन्यन्ते ॥73॥

अन्वयार्थ : अज्ञान व प्रमाद से (**ऊर्ध्वाधस्तात्तिर्यग्व्यतिपाताः**) ऊपर, नीचे तथा दिशाओं–विदिशाओं की मर्यादा का उल्लंघन करना (**क्षेत्रवृद्धिः**) क्षेत्र की मर्यादा बढ़ा लेना [**च**] और (**अवधीनाम्**) की हुई मर्यादाओं का (**विस्मरणम्**) भूल जाना ये (**पञ्च**) पाँच (**दिग्विरतेः**) दिग्व्रत के (**अत्याशाः**) अतिचार (**मन्यन्ते**) माने जाते हैं।

भावार्थ : ऊपर, नीचे तथा दिशाओं–विदिशाओं की मर्यादा का उल्लंघन, निर्धारित मर्यादा में वृद्धि तथा सीमांकन का विस्मरण ये दिग्व्रत के पाँच अतिचार हैं।

अनर्थदण्डत्याग व्रत का लक्षण

अभ्यन्तरं दिगवधेरपार्थिकेभ्यः सपापयोगेभ्यः।
विरमणमनर्थदण्ड, व्रतं विदुर्व्रतधराग्रण्यः॥ 74॥

अन्वयार्थ : (**व्रतधराग्रण्यः**) व्रतधारण करने वाले मुनियों में प्रधान तीर्थंकरदेवादि (**दिगवधेः**) दिशाओं की मर्यादा के (**अभ्यन्तरम्**) भीतर (**अपार्थिकेभ्यः**) प्रयोजनरहित (**सपापयोगेभ्यः**) पापबंध के कारण मन, वचन, काय की प्रवृत्तियों से (**विरमणम्**) विरक्त होने को (**अनर्थदण्ड व्रतम्**) अनर्थदण्डत्याग व्रत (**विदुः**) कहते हैं।

भावार्थ : दिशाओं की मर्यादाओं के भीतर प्रयोजन रहित पाप योगों (स्रोतों) से विरक्त होना अनर्थदण्डव्रत है। यहाँ प्रयोजन शब्द ध्यान देने योग्य है।

अनर्थदण्ड के भेद

पापोपदेश-हिंसादानापध्यान-दुःश्रुतीः पञ्च।
प्राहुःप्रमादचर्यामनर्थदण्डानदण्डधराः॥ 75॥

अन्वयार्थ : (**अदण्डधराः**) गणधरादिक (**पापोपदेश हिंसादाना-पध्यान-दुःश्रुतीः**) पापोपदेश, हिंसादान, अपध्यान, दुःश्रुति को (**च**) और (**प्रमादचर्याम्**) प्रमादचर्या (**पंच**) इन पाँच को (**अनर्थदण्डान्**) अनर्थदण्ड (**प्राहुः**) कहते हैं।

भावार्थ : पापोपदेश, हिंसादान, अपध्यान, दुःश्रुति और प्रमादचर्या ये पाँच अनर्थदण्ड के भेद हैं।

पापोपदेश अनर्थदण्ड का लक्षण

तिर्यक्क्लेशवणिज्याहिंसारम्भप्रलम्भनादीनाम् ।
कथाप्रसङ्गः प्रसवः, स्मर्त्तव्यः पाप उपदेशः॥ 76॥

अन्वयार्थ : (**तिर्यक्क्लेशवणिज्या**) पशुओं को क्लेश पहुँचाने वाली क्रियायें, ऐसा व्यापार (**हिंसारम्भ**) हिंसा, आरम्भ और (**प्रलम्भना-दीनाम्**) छल आदि की (**कथाप्रसंगः**) कथाओं का प्रसंग (**प्रसवः**) उत्पन्न करना (**पाप उपदेशः**) पापोपदेश नामक अनर्थदण्ड (**स्मर्त्तव्यः**) जानना चाहिए।

भावार्थ : पशुओं को क्लेश पहुँचाने वाली क्रियायें, व्यापार, हिंसा, आरम्भ तथा छल आदि के प्रेरक कथा प्रसंगों का बार-बार कथन करना, पापोपदेश अनर्थदण्ड कहलाता है।

हिंसादान अनर्थदण्ड का लक्षण

परशुकृपाणखनित्रज्वलनायुधशृङ्गिशृंखलादीनाम्।
वधहेतूनां दानं, हिंसादानं ब्रुवन्ति बुधाः ॥ 77 ॥

अन्वयार्थ : (**बुधाः**) गणधरदेवादिक (**परशु**) फरसा, (**कृपाण**) तलवार, (**खनित्र**) कुदाली, फावड़ा (**ज्वलनायुध**) अग्नि, छुरी, कटार आदि हथियार, (**शृंगि**) सींगी या विष और (**शृंखलादीनाम्**) सांकल आदि (**वधहेतूनां दानं**) हिंसा के कारणों के दान को (**हिंसादानं**) हिंसादान नाम का अनर्थदण्ड (**ब्रुवन्ति**) कहते हैं।

भावार्थ : फरसा, तलवार, गेंती, कुदाली, अग्नि, आयुध, विष, सांकल आदि वध कारणों (हिंसा के उपकरणों) का दिया जाना 'हिंसादान' अनर्थदण्ड है।

अपध्यान अनर्थदण्ड का लक्षण

वधबन्धच्छेदादेर्द्वेषाद्रागाच्च परकलत्रादेः।
आध्यानमपध्यानं, शासति जिनशासने विशदाः ॥ 78 ॥

अन्वयार्थ : (**जिनशासने विशदाः**) जिनशासन में निपुण पुरुष (**द्वेषात्**) द्वेष के कारण किसी के (**वधबन्धच्छेदादेः**) नाश होने, बाँधे जाने, कट जाने आदि का (**च**) और (**रागात्**) राग के कारण (**परकलत्रादेः**) परस्त्री आदि का (**आध्यानम्**) चिन्तन करने को (**अपध्यानम्**) अपध्यान नामक अनर्थदण्ड (**शासति**) कहते हैं।

भावार्थ : द्वेष भावों से युक्त होने के कारण किसी प्राणी के धन-धान्यादि के नाश होने, मारे-पीटे जाने, बाँधे जाने, अंग-छेदन, हराये जाने आदि का तथा राग-भाव से युक्त परस्त्री, परधन आदि सामिग्रियों का दुश्चिन्तन करने को अपध्यान अनर्थदण्ड कहा गया है।

दुःश्रुति अनर्थदण्ड का लक्षण

आरम्भसङ्गसाहसमिथ्यात्वद्वेषराग मदमदनैः।
चेतःकलुषयतां श्रुतिरवधीनां दुःश्रुतिर्भवति॥ 79 ॥

अन्वयार्थ : (**आरम्भ**) आरम्भ (**सङ्ग**) परिग्रह (**साहस**) साहस (**मिथ्यात्व**) मिथ्यात्व (**द्वेष**) द्वेष (**राग**) राग और (**मदमदनैः**) विषयभोग से (**चेतः**) चित्त को (**कलुषयताम्**) मलीन करने वाले (**अवधीनाम्**)

शास्त्रों का (**श्रुतिः**) सुनना (**दुःश्रुतिः**) दुःश्रुति नामक अनर्थदण्ड (**भवति**) कहलाता है।

भावार्थ : आरम्भ, परिग्रह, साहस, मिथ्यात्व, राग, द्वेष, मद और विषयभोग से चित्त को मलिन करने वाले शास्त्रों को सुनना दुःश्रुति अनर्थदण्ड है।

प्रमादचर्या अनर्थदण्ड का लक्षण

क्षितिसलिलदहनपवनारम्भं विफलं वनस्पतिच्छेदं।
सरणं सारणमपि च, प्रमादचर्यां प्रभाषन्ते॥ 80॥

अन्वयार्थ : (**विफलम्**) निष्प्रयोजन (**क्षितिसलिलदहनपवनारम्भम्**) पृथ्वी, पानी, अग्नि और वायु का आरम्भ करना, (**वनस्पतिच्छेदम्**) वनस्पति का छेदना, (**सरणं**) स्वयं घूमना (**च**) और (**सारणं**) दूसरों को घुमाना (**प्रमादचर्यां**) प्रमादचर्या नामक अनर्थदण्ड (**प्रभाषन्ते**) कहलाता है।

भावार्थ : बिना किसी प्रयोजन के जमीन खोदने, जल बहाने, आग जलाने, हवा करने, वनस्पति तोड़ने, घूमने और घुमाने को प्रमादचर्या अनर्थदण्ड कहते हैं।

अनर्थदण्ड व्रत के अतिचार

कन्दर्पं कौत्कुच्यं, मौखर्यमतिप्रसाधनं पञ्च।
असमीक्ष्य-चाधिकरणं, व्यतीतयोऽनर्थदण्डकृद्विरतेः॥ 81॥

अन्वयार्थ : (**कन्दर्पं**) हँसी करते हुए अशिष्ट वचन कहना, (**कौत्कुच्यम्**) शरीर की कुचेष्टा करना (**मौखर्यम्**) व्यर्थ अधिक बोलना (**अतिप्रसाधनम्**) भोगोपभोग सामग्री का आवश्यकता से ज्यादा संग्रह करना (**च**) और (**असमीक्ष्य अधिकरणम्**) बिना मतलब के कार्य करना, ये (**पञ्च**) पाँच (**अनर्थदण्डकृद्विरतेः**) अनर्थदण्डव्रत के (**व्यतीतयः**) अतिचार हैं।

भावार्थ : काम विषयक तीव्रता के कारण हँसी-ठट्ठा करते हुए अशिष्ट शब्द कहना, शरीर की कुचेष्टा करते हुए अशिष्ट वचन कहना, फालतू में अधिक बकवास करना, आवश्यकता से अधिक भोगोपभोग की सामग्री संचित करना और बिना किसी प्रयोजन के निरर्थक मन, वचन, काय की प्रवृत्ति करना, अनर्थदण्डव्रत के पाँच अतिचार हैं।

भोगोपभोग परिमाणव्रत का लक्षण

अक्षार्थानां परिसंख्यानं, भोगोपभोगपरिमाणम्।
अर्थवतामप्यवधौ, रागरतीनां तनूकृतये॥ 82॥

अन्वयार्थ : (**रागरतीनाम्**) राग से होने वाली विषयों की लालसा के (**तनूकृतये**) घटाने के लिए (**अवधौ**) परिग्रह परिमाणव्रत में की हुई परिग्रह की मर्यादा में (**अपि**) भी (**अर्थवताम्**) प्रयोजनभूत (**अक्षार्थानाम्**) इन्द्रियों के विषयों का (**परिसंख्यानम्**) परिमाण करना (**भोगोपभोगपरिमाणम्**) भोगोपभोग परिमाण नामक व्रत कहलाता है।

भावार्थ : राग के उद्रेक से होने वाली आसक्ति को घटाने के लिए परिग्रह परिमाण के अन्तर्गत प्रतिदिन काम में आने वाले इन्द्रियों के विषयों का निर्धारित समय तक या जीवन पर्यन्त ''अमुक वस्तु, इतनी रखूँगा और अमुक इतनी रखूँगा'' इस तरह का परिमाण निश्चित करना भोगोपभोगपरिमाण व्रत कहलाता है।

भोग और उपभोग का लक्षण

भुक्त्वा परिहातव्यो, भोगो भुक्त्वा पुनश्च भोक्तव्यः।
उपभोगोऽशनवसनप्रभृतिः पञ्चेन्द्रियो विषयः॥ 83॥

अन्वयार्थ : (**अशनवसनप्रभृतिः**) भोजन वस्त्र आदिक (**पञ्चेन्द्रियः**) पाँचों इन्द्रिय सम्बन्धी जो (**विषयः**) विषय (**भुक्त्वा**) भोग करके (**परिहातव्यः**) छोड़ दिया जाता है, वह तो (**भोगः**) भोग है (**च**) और (**भुक्त्वा**) भोग करके (**पुनः**) फिर (**भोक्तव्यः**) भोगने योग्य वस्तु (**उपभोगः**) उपभोग है।

भावार्थ : जो पदार्थ बार-बार भोगने के काम में आता है, वह उपभोग है। जैसे-कपड़े, गहने आदि और जो पदार्थ एक बार भोगने के बाद फिर भोगने योग्य नहीं रहता, वह भोग कहलाता है। जैसे-भोजन, माला आदि।

मकारों के त्याग का उपदेश और उनके सेवन से हानि

त्रसहतिपरिहरणार्थं, क्षौद्रं पिशितं प्रमादपरिहृतये।
मद्यं च वर्जनीयं, जिनचरणौ शरणमुपयातैः॥ 84॥

अन्वयार्थ : (**जिनचरणौ**) जिनेन्द्रदेव के चरणों की (**शरणम्**) शरण

को (**उपयातैः**) प्राप्त हुए श्रावकों के द्वारा (**त्रसहति परिहरणार्थं**) त्रस जीवों की हिंसा को दूर करने के लिए (**क्षौद्रम्**) मधु (**पिशितम्**) मांस (**च**) और (**प्रमादपरिहृतये**) प्रमाद को दूर करने के लिए (**मद्यम्**) मदिरा (**वर्जनीयम्**) त्याग देना चाहिए।

भावार्थ : मधु और माँस के खाने से त्रस जीवों की हिंसा होती है और शराब पीने से त्रस हिंसा के साथ मोह की भी उत्पत्ति होती है, अतः भोगोपभोग परिमाण व्रत के धारक को इन तीनों का सर्वथा त्याग कर देना चाहिए, यानी इनके परिमाण की नहीं बल्कि इन्हें सर्वथा छोड़ने की बात है। ये सर्वथा वर्जनीय हैं।

भोगोपभोगपरिमाणव्रत में त्याज्य वस्तुएँ

अल्पफलबहुविघातान्, मूलक-मार्द्राणि शृङ्गवेराणि।
नवनीतनिम्बकुसुमं, कैतक-मित्येव-मवहेयम्॥ 85॥

अन्वयार्थ : इस व्रत में (**अल्पफल बहुविघातात्**) फल थोड़ा और स्थावर हिंसा अधिक होने से (**आर्द्राणि**) सचित्त (**शृङ्गवेराणि**) अदरक (**मूलकम्**) मूली, गाजर आदि (**नवनीतनिम्बकुसुमं**) मक्खन, नीम के फूल (**कैतकम्**) केतकी के फूल (**इति**) इत्यादि (**एवम्**) ऐसी और वस्तुएँ (**अवहेयम्**) छोड़ देना चाहिए।

भावार्थ : इसी तरह इस व्रत के धारक को ऐसे फलों को जिनके खाने में फल कम, किन्तु स्थावर हिंसा अधिक होती है। जैसे-अदरक, मूली, गाजर आदि जमीकंद, मक्खन, नीम-केतकी आदि के फूल तथा इसी तरह की अन्य सारी वस्तुएँ सर्वथा छोड़ देना चाहिए।

व्रत का लक्षण

यदनिष्टं तद् व्रतयेद्यच्चानुपसेव्यमेतदपि जह्यात्।
अभिसन्धिकृता विरतिर्विषयाद्योग्याद्व्रतं भवति॥ 86॥

अन्वयार्थ : इस व्रत में (**यत्**) जो वस्तु (**अनिष्टम्**) अनिष्ट-अहितकर हो (**तद्**) उसको (**व्रतयेत्**) छोड़े (**च**) और (**यत्**) जो (**अनुपसेव्यम्**) सेवन करने के अयोग्य हो (**एतदपि**) यह भी (**जह्यात्**) छोड़े (**यतः**) क्योंकि (**योग्यात्**) योग्य (**विषयात्**) विषय से (**अभिसन्धिकृता**) अभिप्रायपूर्वक

की हुई (**विरतिः**) निवृत्ति (**व्रतम्**) व्रत (**भवति**) कहलाती है।

भावार्थ : भोगोपभोग के जो पदार्थ अनिष्ट हों (शरीर में बाधा उत्पन्न करते हों तथा प्रकृति / समय के प्रतिकूल हों) उन्हें निवृत्ति का विषय बनायें अर्थात् छोड़ें तथा जो अनिष्ट न होते हुए भी गर्हित हों (देश-राष्ट्र, समाज, कुटुम्ब की मर्यादा में न आते हों) उन्हें भी छोड़ें, क्योंकि योग्य संदर्भ में संकल्पपूर्वक जो विरक्ति होती है, वह व्रत कहलाती है।

यम और नियम का लक्षण

नियमो यमश्च विहितौ, द्वेधा भोगोपभोगसंहारात्।
नियमः परिमितकालो, यावज्जीवं यमो ध्रियते॥ 87॥

अन्वयार्थ : (**भोगोपभोगसंहारात्**) भोग और उपभोग के परिमाण का आश्रयकर (**नियमः**) नियम (**च**) और (**यमः**) यम (**द्वेधा**) दो प्रकार के स्थान (**विहितौ**) व्यवस्थापित हैं-प्रतिपादित हैं, उनमें (**परिमितकालः**) जो काल के परिमाण से सहित है, वह (**नियमः**) नियम है और जो (**यावज्जीवं**) जीवनपर्यन्त के लिए (**ध्रियते**) धारण किया जाता है, वह (**यमः**) यम कहलाता है।

भावार्थ : भोगोपभोग परिमाण के संदर्भ में त्याग दो प्रकार का माना गया है, नियम व यम। जो त्याग नियत समय के लिए किया जाता है, वह नियम और जो जीवन पर्यन्त के लिए किया जाता है, वह यम कहलाता है।

भोगोपभोग सामग्री

भोजन-वाहन-शयन-स्नान-पवित्राङ्गरागकुसुमेषु ।
ताम्बूल-वसन-भूषण-मन्मथ-संगीतगीतेषु ॥88॥
अद्य दिवा रजनी वा, पक्षो मासस्तथर्तुरयनं वा।
इति कालपरिच्छित्त्या, प्रत्याख्यानं भवेन्नियमः॥ 89॥

अन्वयार्थ : (**भोजनवाहनशयनस्नानपवित्राङ्गरागकुसुमेषु**) भोजन, सवारी, शय्या, स्नान, पवित्र अंग में सुगन्ध पुष्पादिक धारण तथा (**ताम्बूलवसन भूषणमन्मथसंगीतगीतेषु**) पान, वस्त्र, अलंकार, कामभोग, संगीत और गीत के विषय में, (**अद्य**) आज एक घड़ी पहर आदि (**दिवा**) एक दिन (**रजनी**)

एक रात्रि (**पक्षः**) एक पक्ष (**मासः**) एक मास, (**ऋतुः**) दो मास (**वा**) अथवा (**अयनम्**) छह मास (**इति**) इस प्रकार (**कालपरिच्छित्त्या**) काल के नियम से (**प्रत्याख्यानम्**) त्याग करना भोगोपभोगपरिमाणव्रत में (**नियमः**) नियम (**भवेत्**) हैं।

भावार्थ : इस व्रत में भोजन, वाहन, शय्या, स्नान, सुगन्ध, अंजन, तिलक, पुष्प, पान, वस्त्र, आभूषण, काम-भोग, संगीत आदि का घड़ी, पहर, दिन, पक्ष, मास, दो मास, छह मास आदि के लिए त्याग किया जाता है।

भोगोपभोगपरिमाणव्रत के अतिचार

विषयविषतोऽनुपेक्षानुस्मृतिरतिलौल्यमतितृषाऽनुभवौ।
भोगोपभोगपरिमाव्यतिक्रमाः पञ्च कथ्यन्ते ॥90॥

अन्वयार्थ : (**विषयविषतः**) विषयरूपी विष से (**अनुपेक्षा**) उपेक्षा नहीं करना (**अनुस्मृतिः**) भोगे हुए विषयों का बार-बार स्मरण करना (**अतिलौल्यम्**) वर्तमान विषयों में लम्पटता रखना (**अतितृषानुभवौ**) आगामी विषयों की अधिक तृष्णा रखना तथा वर्तमान विषय का अत्यन्त आसक्ति पूर्वक अनुभव करना (**पञ्च**) ये पाँच (**भोगोपभोगपरिमाव्यतिक्रमाः**) भोगोपभोग परिमाण व्रत के अतिचार (**कथ्यन्ते**) कहे गये हैं।

भावार्थ : विषय रूपी विष की उपेक्षा न करना, भुक्त विषयों का बार-बार स्मरण करना, भावी भोगों की अतिगृद्धतापूर्वक इच्छा करना, प्रस्तुत विषयों में अतीव लालसा रखना, नियतकालिक भोगोपभोगों का सेवन करते हुए, उन्हें अत्यधिक आसक्ति से भोगना, ये भोगोपभोग परिमाण व्रत के पाँच अतिचार हैं।

शिक्षाव्रत अधिकार

शिक्षाव्रत के भेद

देशावकाशिकं वा, सामयिकं प्रोषधोपवासो वा।
वैयावृत्त्यं शिक्षाव्रतानि चत्वारि शिष्टानि ॥91॥

अन्वयार्थः(**देशावकाशिकम्**) देशावकाशिक, (**सामायिकम्**) सामायिक, (**प्रोषधोपवासः**) प्रोषधोपवास (**वा**) और (**वैयावृत्त्यं**) वैयावृत्य

ये (**चत्वारि**) चार (**शिक्षाव्रतानि**) शिक्षाव्रत (**शिष्टानि**) कहे गये हैं।

भावार्थ : देशावकाशिक, सामायिक, प्रोषधोपवास तथा वैयावृत्य ये चार शिक्षाव्रत हैं।

देशावकाशिक शिक्षाव्रत का लक्षण

देशावकाशिकं स्यात् कालपरिच्छेदनेन देशस्य।
प्रत्यहमणुव्रतानां, प्रतिसंहारो विशालस्य॥ 92॥

अन्वयार्थ : (**विशालस्य**) दिग्व्रत में की हुई लम्बी-चौड़ी (**देशस्य**) क्षेत्र की मर्यादा का (**कालपरिच्छेदनेन**) काल के विभाग से (**प्रत्यहम्**) प्रतिदिन (**प्रतिसंहारः**) त्याग करना (**अणुव्रतानाम्**) अणुव्रत पालक श्रावकों का (**देशावकाशिकम्**) देशावकाशिक व्रत (**स्यात्**) कहलाता है।

भावार्थ : दिग्व्रत में संकल्पित देश-काल की विस्तृत मर्यादा को उत्तरोत्तर प्रतिदिन कम करना देशावकाशिक शिक्षाव्रत है।

देशव्रत में क्षेत्र की मर्यादा की रीति

गृहहारिग्रामाणां, क्षेत्रनदीदावयोजनानां च।
देशावकाशिकस्य, स्मरन्ति सीम्नां तपोवृद्धाः॥ 93॥

अन्वयार्थः (**तपोवृद्धाः**) गणधरदेव आदि (**देशावकाशिकस्य**) देशावकाशिक शिक्षाव्रत के क्षेत्र की (**गृहहारिग्रामाणाम्**) प्रसिद्ध घर, गली, गाँव (**च**) और (**क्षेत्रनदीदावयोजनानाम्**) खेत, नदी, जंगल और योजनों की (**सीम्नाम्**) मर्यादा (**स्मरन्ति**) स्मरण करते हैं।

भावार्थ : इस व्रत में प्रतिदिन, दिग्व्रत की मर्यादा के अन्दर, आने-जाने की छोटी सीमा निर्धारित की जाती है।

देशव्रत में काल की मर्यादा की रीति

संवत्सरमृतुरयनं, मासचतुर्मासपक्षमृक्षं च।
देशावकाशिकस्य, प्राहुः कालावधिं प्राज्ञाः॥ 94॥

अन्वयार्थः (**प्राज्ञाः**) गणधर देव या आचार्य (**देशावकाशिकस्य**) देशावकाशिक व्रत की (**कालावधिम्**) काल मर्यादा (**संवत्सरम्**) एक वर्ष (**अयनम्**) छह मास (**ऋतुः**) दो माह (**मासचतुर्मासपक्षम्**) एक मास,

चार मास, पन्द्रह दिन (**च**) और (**ऋक्षम्**) एक दिन या एक नक्षत्र तक (**प्राहुः**) कहते हैं।

भावार्थ : इस व्रत में गमनागमन के क्षेत्र का परिमाण किसी प्रसिद्ध घर, वीथिका, ग्राम, खेत, नदी, जंगल और कुछ योजन (मील/किलोमीटर) आदि तक यथाशक्ति किया जाता है।

देशव्रती के उपचार से महाव्रत

सीमान्तानां परतः, स्थूलेतरपञ्चपापसन्त्यागात्।
देशावकाशिकेन च, महाव्रतानि प्रसाध्यन्ते॥ 95॥

अन्वयार्थ : (**सीमान्तानाम्**) सीमाओं के अन्तभाग के (**परतः**) आगे (**स्थूलेतरपञ्चपापसन्त्यागात्**) स्थूल और सूक्ष्म पाँचों पापों का सम्यक् प्रकार त्याग हो जाने से (**देशावकाशिकेन**) देशावकाशिक व्रत के द्वारा (**महाव्रतानि**) महाव्रत (**प्रसाध्यन्ते**) सिद्ध किए जाते हैं।

भावार्थ : देशावकाशिक व्रत की मर्यादा के बाहर चूँकि देशावकाशिक व्रतधारी के स्थूल और सूक्ष्म दोनों ही पापों का अभाव हो जाता है, अतः उसके अणुव्रत उस अपेक्षा से महाव्रत-जैसे हो जाते हैं। यह कथन निश्चय दृष्टि से नहीं, उपचार की दृष्टि से है।

देशावकाशिक शिक्षाव्रत के अतिचार

प्रेषणशब्दानयनं, रूपाभिव्यक्तिपुद्गलक्षेपौ।
देशावकाशिकस्य, व्यपदिश्यन्तेऽत्ययाः पञ्च॥ 96॥

अन्वयार्थ : देशावकाशिकव्रत में की हुई मर्यादा के बाहर (**प्रेषणशब्दा-नयनम्**) भेजना, शब्द करना, मँगाना, (**रूपाभिव्यक्ति पुद्गलक्षेपौ**) शरीर दिखाना और पत्थर आदि फेंकना ये (**पञ्च**) पाँच (**देशावकाशिकस्य**) देशावकाशिक शिक्षाव्रत के (**अत्ययाः**) अतिचार (**व्यपदिश्यन्ते**) कहे जाते हैं।

भावार्थ : खुद मर्यादा के भीतर रहते हुए निर्देश देकर किसी व्यक्ति को मर्यादा के बाहर भेजना, मर्यादा से बाहर काम कर रहे व्यक्तियों को ताली, खाँसी आदि के ध्वनि संकेतों से निर्देश देना, मर्यादा से बाहर की वस्तु को मर्यादा के भीतर मँगाना, मर्यादा के बाहर काम कर रहे व्यक्तियों को हावभाव द्वारा निर्दिष्ट करना, मर्यादा से बाहर काम कर रहे व्यक्तियों का ध्यान आकर्षित

करने के लिए उन पर/उन की ओर पत्थर, कंकर आदि फेंकना, ये देशावकाशिक शिक्षाव्रत के पाँच अतिचार हैं।

सामायिक शिक्षाव्रत का लक्षण

आसमयमुक्ति मुक्तं, पञ्चाघाना-मशेषभावेन।
सर्वत्र च सामयिकाः, सामयिकं नाम शंसन्ति॥ 97॥

अन्वयार्थ : (**सामयिकाः**) सामायिक के ज्ञाता गणधरदेवादिक (**अशेषभावेन**) मन, वचन, काय और कृत, कारित, अनुमोदना से (**सर्वत्र**) सब जगह (**आसमयमुक्तिमुक्तम्**) सामायिक के लिए निश्चित समय तक (**पञ्चाघानाम्**) पाँचों पापों के (**मुक्तम्**) त्याग करने को (**सामयिकं नाम**) सामायिक नामक शिक्षाव्रत (**शंसन्ति**) कहते हैं।

भावार्थ : दिग्व्रत तथा देशव्रत की मर्यादा के भीतर और बाहर सर्वत्र सामायिक के लिए निर्धारित अवधि में मन, वचन, काय तथा कृत, कारित, अनुमोदना पूर्वक पाँचों पापों का त्याग सामायिक शिक्षाव्रत है।

समय शब्द की व्युत्पत्ति

मूर्धरुहमुष्टिवासो, बन्धं पर्य्यङ्कबन्धनं चापि।
स्थानमुपवेशनं वा, समयं जानन्ति समयज्ञाः॥ 98॥

अन्वयार्थ : (**समयज्ञाः**) आगम के ज्ञाता पुरुष (**मूर्धरुहमुष्टि-वासोबन्धं**) केश, मुष्टि, वस्त्र के बंध के काल को (**च**) और (**पर्य्यङ्कबन्धनं**) पद्मासन के काल को (**स्थानं**) कायोत्सर्गासन के काल को (**वा**) अथवा (**उपवेशनम्**) सामान्य आसन के काल को (**समयं**) सामायिक के योग्य समय (**जानन्ति**) जानते हैं।

भावार्थ : जो समयज्ञ हैं, आगम और शास्त्र के ज्ञाता हैं वे केशबंधन, मुष्टिबंधन, वस्त्रबंधन, पर्यंकबंधन, पद्मासनादि की स्थिति में खड़े होकर या बैठकर निश्चित समय तक रागद्वेष आदि से रहित शुद्धात्मा का रसास्वादन करते हैं, उसका अनुसंधान करते हैं, उसे जानते हैं।

सामायिक करने का स्थान

एकान्ते सामयिकं, निर्व्याक्षेपे वनेषु वास्तुषु च।
चैत्यालयेषु वापि च, परिचेतव्यं प्रसन्नधिया॥ 99॥

अन्वयार्थ : (**निर्व्याक्षेपे**) उपद्रव रहित (**एकान्ते**) एकान्त स्थान में (**वनेषु**) वन में (**वास्तुषु**) एकान्त घर या धर्मशाला में (**च**) और (**चैत्यालयेषु**) चैत्यालयों में (**अपि**) और पर्वत की गुफा आदि में (**प्रसन्नधिया**) प्रसन्नचित्त से (**सामयिकं**) सामायिक (**परिचेतव्यम्**) बढ़ाना चाहिए।

भावार्थ : जहाँ पर चित्त में विक्षोभ उत्पन्न न हो ऐसे एकान्त स्थान में, वनों में, वसतिकाओं में अथवा चैत्यालयों में प्रसन्नचित्त से सामायिक की वृद्धि करना चाहिए।

सामायिक बढ़ाने की रीति

व्यापार वैमनस्याद्विनिवृत्त्यामन्तरात्म - विनिवृत्त्या।
सामयिकं बध्नीयादुपवासे चैकभुक्ते वा ॥ 100॥

अन्वयार्थ : (**व्यापारवैमनस्यात्**) कायादि की चेष्टा और मनोव्यग्रता से (**विनिवृत्त्या**) निवृत्ति होने पर (**अन्तरात्मविनिवृत्त्या**) मन के विकल्पों की निवृत्ति से (**उपवासे**) उपवास के दिन (**वा**) और (**एक भुक्ते**) एकाशन के दिन (**सामयिकम्**) सामायिक को (**बध्नीयात्**) बढ़ाना चाहिए।

भावार्थ : उपवास तथा एकासन के दिन शरीर और मन की व्यग्रताओं से निवृत्त होकर अन्तर्जल्पादि रूप संकल्प-विकल्प के त्याग द्वारा सामायिक को सुदृढ़ करना चाहिए।

प्रतिदिन सामायिक करने का उपदेश

सामयिकं प्रतिदिवसं, यथावदप्यनलसेन चेतव्यं।
व्रतपञ्चक-परिपूरण- कारणमवधानयुक्तेन॥ 101॥

अन्वयार्थ : (**व्रतपञ्चकपरिपूरणकारणम्**) पाँचों व्रतों की पूर्ति का कारण (**सामयिकम्**) सामायिक (**अनलसेन**) आलस्य से रहित और (**अवधानयुक्तेन**) एकाग्रचित्त सहित श्रावक के द्वारा (**प्रतिदिवसम्**) प्रतिदिन (**यथावत्**) शास्त्रोक्त विधि से (**चेतव्यम्**) बढ़ाया जाना चाहिए।

भावार्थ : न सिर्फ उपवास या एकाशन के दिन ही नहीं वरन् प्रतिदिन अप्रमत्त और एकाग्रचित्त होकर गृहस्थ को यथाविधि सामायिक करनी चाहिए, क्योंकि सामायिक ही अहिंसादि पाँच व्रतों की परिपूर्णता के लिए कारणभूत है।

सामायिकी के मुनितुल्यता

सामयिके सारम्भाः, परिग्रहा नैव सन्ति सर्वेऽपि।
चेलोपसृष्टमुनिरिव, गृही तदा याति यतिभावं॥ 102॥

अन्वयार्थ : (**यदा**) जब (**सामयिके**) सामायिक के समय में (**सारम्भाः**) कृषि आदि आरम्भ सहित (**सर्वे**) सब अन्तरंग बहिरंग (**परिग्रहाः**) परिग्रह (**नैव सन्ति**) नहीं होते हैं [**अतः**] इसलिए (**तदा**) उस समय (**गृही**) गृहस्थ (**चेलोपसृष्टमुनिः इव**) उपसर्ग के कारण वस्त्र से ढके हुए मुनि के समान (**यतिभावम्**) मुनिपने को (**आयाति**) प्राप्त होता है।

भावार्थ :सामायिक के समय कृषि आदि आरम्भों के साथ-साथ भीतर-बाहर के समस्त परिग्रहों का अभाव भी रहता है, अतः सामायिक की इस निर्मल मनोदशा में श्रावक की स्थिति चेलोपसृष्ट मुनि जैसी होती है अर्थात् यदि वह वस्त्र का त्याग और कर दे तो उतनी अवधि के लिए वह ठीक मुनि जैसा हो जाये।

सामायिक में परीषहादि सहन करें

शीतोष्णदंशमशकपरीषहमुपसर्गमपि च मौनधराः।
सामयिकं प्रतिपन्ना, अधिकुर्वीरन्नचलयोगाः॥ 103॥

अन्वयार्थ : (**सामयिकम्**) सामायिक को (**प्रतिपन्नाः**) धारण करने वाले (**मौनधराः**) मौनधारी (**च**) और (**अचलयोगाः**) योगों की चंचलता रहित व्यक्ति (**शीतोष्णदंशमशकपरीषहं**) शीत, उष्ण, दंशमशक परीषहों को (**च**) और (**उपसर्गम्**) उपसर्ग को (**अपि**) भी (**अधिकुर्वीरन्**) सहन करें।

भावार्थ :सामायिक में लीन (निमग्न) व्यक्ति को मौन धारण कर मन, वचन और काय को अनुशासन में रखते हुए सर्दी-गर्मी/डाँस-मच्छर आदि बाईस परीषह तथा देव, मनुष्य और तिर्यंच-कृत उपसर्गों को सहन करना चाहिए तथा ऐसा करते हुए अपने मन को पूरी तरह निराकुल और अविचलित रखना चाहिए।

सामायिक के समय करने योग्य विचार

अशरण-मशुभ-मनित्यं, दुःख-मनात्मानमावसामि भवम्।
मोक्षस्तद्विपरीतात्मेति ध्यायन्तु सामयिके ॥ 104 ॥

अन्वयार्थ : सामायिक करने वाले व्यक्ति (**सामयिके**) सामायिक में (**अशरणम्**) अशरण रूप (**अशुभम्**) अशुभ रूप (**अनित्यं**) अनित्य रूप (**दुःखम्**) दुःख रूप और (**अनात्मानम्**) अनात्मस्वरूप (**भवम्**) संसार में (**आवसामि**) निवास करता हूँ और (**मोक्षः**) मोक्ष (**तद्विपरीतात्मा**) उससे विपरीत स्वरूप वाला है (**इति**) इस प्रकार (**ध्यायन्तु**) विचारें।

भावार्थ : सामायिक की प्रक्रिया में निमग्न श्रावक अनुप्रेक्षण करे कि वह जिस संसार में रहता है, वह अशरण, अशुभ, अनित्य/क्षणवर्ती (पर्याय दृष्टि से) दुःखदायक और पर-रूप है तथा मोक्ष इससे विपरीत अर्थात् शरण, शुभ, सुखपूर्ण और आत्म-स्वरूप है।

सामायिक शिक्षाव्रत के अतिचार

वाक्कायमानसानां, दुःप्रणिधानान्यनादरास्मरणे।
सामयिकस्यातिगमा, व्यज्यन्ते पञ्च भावेन ॥105॥

अन्वयार्थ : (**वाक्कायमानसानाम्**) वचन, काय और मन की (**दुःप्रणिधानानि**) खोटी प्रवृत्ति (**अनादरास्मरणे**) अनादर और अस्मरण ये (**पञ्च**) पाँच (**भावेन**) परमार्थ से (**सामयिकस्य**) सामायिक के (**अतिगमाः**) अतिचार (**व्यज्यन्ते**) प्रकट किए गये हैं।

भावार्थ : वचन से विचलित होना, काय से असंयत होना, मन को आर्त-रौद्र ध्यान में लगाना, सामायिक के प्रति अनुत्साह रखना उसे बोझ की तरह निपटाना और सामयिक पाठ/प्रक्रिया को भूल जाना, ये सामायिक व्रत के पाँच अतिचार हैं।

प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत का लक्षण

पर्वण्यष्टम्यां च, ज्ञातव्यः प्रोषधोपवासस्तु।
चतुरभ्यवहार्य्याणां, प्रत्याख्यानं सदेच्छाभिः ॥106॥

अन्वयार्थ : (**पर्वणि**) चतुर्दशी (**च**) और (**अष्टम्याम्**) अष्टमी के दिन (**सदा**) हमेशा के लिए (**इच्छाभिः**) व्रत विधान की वांछा से

(चतुरभ्यवहारर्य्याणां) खाद्य, स्वाद्य, लेह्य और पेय इन चार प्रकार के आहारों का **(प्रत्याख्यानं)** त्याग करना **(प्रोषधोपवासः)** प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत **(ज्ञातव्यः)** जानना चाहिए।

भावार्थ : सदैव प्रत्येक चतुर्दशी और अष्टमी को व्रत-पालन की आंतरिक अभिलाषा से खाद्य (रोटी, दाल भातादि) स्वाद्य (लाडू, पेड़ा, बरफी आदि) लेह्य (रबड़ी, चटनी, आम रस आदि) और पेय (दूध, पानी, छाँछ आदि) रूप चारों प्रकार के आहारों का त्याग प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत है।

उपवास के दिन त्याज्य कार्य

पञ्चानां पापानामलंक्रियारम्भगन्धपुष्पाणाम्।
स्नानाञ्जननस्याना-मुपवासे परिहृतिं कुर्य्यात् ॥107॥

अन्वयार्थ : (उपवासे) उपवास के दिन **(पञ्चानाम्)** पाँचों **(पापानाम्)** पापों को करना, **(अलंक्रियारम्भगन्धपुष्पाणां)** अलंकार धारण करना, खेती आदि का आरम्भ करना, चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थों का लेप करना, पुष्पमालाएँ धारण करना या पुष्पों को सूँघना **(स्नानाञ्जननस्यानां)** स्नान करना, अञ्जन-काजल, सुरमा आदि लगाना तथा नाक के नस्य आदि का सूंघना इन सबका **(परिहृतिं)** परित्याग **(कुर्य्यात्)** करना चाहिए।

भावार्थ : उपवास के दिन हिंसादिक पाँच पापों का, वस्त्रालंकारों से सज्जित होने का, कृषि आदि आरम्भों का, चन्दन-इत्र आदि गंध द्रव्यों के उपयोग का, पुष्पादि सूंघने या धारण करने का, स्नान का, अंजन-आँजने का और नस्य आदि सूंघने का त्याग करना चाहिए।

उपवास के दिन का कर्त्तव्य

धर्मामृतं सतृष्णः, श्रवणाभ्यां पिबतु पाययेद्वान्यान्।
ज्ञानध्यानपरो वा, भवतूपवसन्नतन्द्रालुः ॥108॥

अन्वयार्थ : (उपवसन्) उपवास करने वाला व्यक्ति **(अतन्द्रालुः)** आलस्यरहित और **(सतृष्णः)** उत्कण्ठित होता हुआ **(धर्मामृतम्)** धर्मरूपी अमृत को **(श्रवणाभ्याम्)** अपने कानों से **(पिबतु)** पीवे **(वा)** तथा **(अन्यान्)** दूसरों को **(पाययेत्)** पिलावे **[च]** और **(ज्ञानध्यानपरः)** ज्ञान-ध्यान में लवलीन **(भवतु)** होवे।

भावार्थ : उपवास करने वाले व्यक्ति को चाहिए कि वह निरालस्य/ अप्रमत्त भाव से उत्साहपूर्वक धर्मामृत का स्वयं पान करे, अन्यों को कराये तथा ज्ञान-ध्यान में तत्पर रहे।

प्रोषध, उपवास और प्रोषधोपवास का लक्षण

चतुराहारविसर्जनमुपवासः प्रोषधः सकृद्भुक्तिः।
स प्रोषधोपवासो, यदुपोष्यारम्भमाचरति॥109॥

अन्वयार्थ : (**चतुराहारविसर्जनम्**) अशन, खाद्य, लेह्य और पेय इन चार प्रकार के आहारों का सर्वथा त्याग (**उपवासः**) उपवास, (**सकृद्**) एक बार (**भुक्तिः**) भोजन करना (**प्रोषधः**) प्रोषध या एकाशन और (**यत्**) जो (**उपोष्य**) उपवास करने के बाद (**आरम्भं**) एकाशन को (**आचरति**) करता है (**सः**) उसकी वह क्रिया (**प्रोषधोपवासः**) प्रोषधोपवास (**कथ्यते**) कहलाती है।

भावार्थ : उपवास क्या है? खाद्य, अशन, लेह्य और पेय रूप चारों आहारों का त्याग। एक बार भोजन प्रोषध कहलाता है, किन्तु जब एक उपवास के पहले और बाद में एकाशन होते हैं तब उस उपवास को प्रोषधोपवास कहते हैं।

प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत के अतिचार

ग्रहणविसर्गास्तरणान्यदृष्टमृष्टान्यनादरास्मरणे ।
यत्प्रोषधोपवासव्यतिलङ्घनपञ्चकं तदिदम् ॥110॥

अन्वयार्थ : (**यत्**) जो (**अदृष्टमृष्टानि**) बिना देखे और बिना शोधे (**ग्रहण विसर्गास्तरणानि**) पूजा आदि के उपकरणों को ग्रहण करना, मलमूत्रादि को छोड़ना और संस्तर आदि को बिछाना तथा (**अनादरास्मरणे**) आवश्यक आदि में अनादर करना और योग्य क्रियाओं को भूल जाना है (**तदिदं**) वे ये (**प्रोषधोपवास व्यति लङ्घनपञ्चकम्**) प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत के पाँच अतिचार हैं।

भावार्थ : बिना देखे तथा बिना शोधे पूजा के उपकरणों को ग्रहण करना, मलमूत्र विसर्जित करना, बिस्तर या आसन बिछाना, षडावश्यकों की उपेक्षा या अनादर करना और उपवास से सम्बन्धित अपेक्षित क्रियाओं का भूल जाना प्रोषधोपवास व्रत के पाँच अतिचार हैं।

वैयावृत्य शिक्षाव्रत का लक्षण

दानं वैयावृत्यं, धर्माय तपोधनाय गुणनिधये।
अनपेक्षितोपचारोपक्रियमगृहाय विभवेन ॥111॥

अन्वयार्थ : (**तपोधनाय**) तप रूप धन से युक्त तथा (**गुणनिधये**) सम्यग्दर्शनादि गुणों के भण्डार (**अगृहाय**) गृहत्यागी-मुनीश्वर के लिए (**विभवेन**) विधि, द्रव्य आदि सम्पत्ति के अनुसार (**अनपेक्षितोपचारोपक्रियम्**) प्रतिदान और प्रत्युपकार की अपेक्षा से रहित (**धर्माय**) स्वपर के धर्म की वृद्धि के लिए (**दानम्**) जो दान दिया जाता है वह (**वैयावृत्यम्**) वैयावृत्य नाम का शिक्षाव्रत (**उच्यते**) कहलाता है।

भावार्थ : गृहत्यागी, गुणनिधान, तपोधन को अपना धर्म पालन करने के लिए उपचार (प्रतिदान) और उपकार की अपेक्षा से रहित होकर विधिपूर्वक अपने वैभव के अनुसार दान देने को वैयावृत्य शिक्षाव्रत कहते हैं।

वैयावृत्य का दूसरा लक्षण

व्यापत्तिव्यपनोदः, पदयोः संवाहनं च गुणरागात्।
वैयावृत्यं यावानुपग्रहोऽन्योऽपि संयमिनाम् ॥112॥

अन्वयार्थ : (**गुणरागात्**) सम्यग्दर्शनादि गुणों की प्रीति से (**संयमिनाम्**) देशव्रत और सकलव्रत के धारक संयमीजनों को (**व्यापत्तिव्यपनोदः**) आई हुई नानाप्रकार की आपत्ति को दूर करना (**पदयोः**) पैरों का, उपलक्षण से हस्तादिक अंगों का (**संवाहनं**) दाबना (**च**) और (**अन्योऽपिः**) अन्य भी (**यावान्**) जितना (**उपग्रहः**) उपकार है, वह (**वैयावृत्यम्**) वैयावृत्य (**कथ्यते**) कहलाता है।

भावार्थ : गुणों में प्रेम करते हुए आत्मकर्त्तव्य समझकर व्रती जनों का दुःख दूर करना, मार्गजन्य आदि थकावट को दूर करने के लिए उनके पैरों का दाबना या और भी उनका जितना उपकार करना है, वह सब वैयावृत्य कहलाता है।

दान का लक्षण

नवपुण्यैः प्रतिपत्तिः सप्तगुणसमाहितेन शुद्धेन।
अपसूनारम्भाणा-मार्याणामिष्यते दानम् ॥113॥

अन्वयार्थ : (**सप्तगुणसमाहितेन**) सात गुणों से सहित और (**शुद्धेन**)

कौलिक, आचरिक तथा शारीरिक शुद्धि से सहित दाता के द्वारा (**अपसूनारम्भाणाम्**) पंच सूना और आरम्भ रहित (**आर्याणां**) सम्यग्दर्शन आदि गुणों से सहित मुनियों को (**नवपुण्यैः**) नवधाभक्ति पूर्वक (**प्रतिपत्तिः**) आहार आदि देना (**दानम्**) दान (**इष्यते**) माना जाता है।

भावार्थ : सात गुण सहित, भद्रपरिणामी श्रावक के द्वारा पंच सूना (पीसना, कूटना, भोजन पकाना, पानी भरना और बुहारना) और आरम्भरहित मुनि को नवधाभक्ति पूर्वक आहार देना दान कहलाता है अथवा मुनि के लिए औषधि, शास्त्र और वसतिका आदि देना तथा त्यागी व्रती और सम्यग्दृष्टि श्रावक को यथायोग्य आहारादि देना भी दान कहलाता है।

दान का फल

गृहकर्मणापि निचितं, कर्म विमार्ष्टि खलु गृहविमुक्तानाम्।
अतिथीनां प्रतिपूजा, रुधिरमलं धावते वारि॥114॥

अन्वयार्थ : (**यथा**) जैसे (**वारि**) जल (**रुधिरम्**) खून को (**धावते**) धो देता है [**तथा**] उसी प्रकार (**गृहविमुक्तानां**) गृह रहित निर्ग्रन्थ (**अतिथीनां**) मुनियों के लिए दिया हुआ (**प्रतिपूजा**) दान (**गृहकर्मणा**) गृहस्थी सम्बन्धी कार्यों से (**निचितमपि**) संचित (**कर्म**) कर्म को (**खलु**) निश्चय से (**विमार्ष्टि**) नष्ट कर देता है।

भावार्थ : जैसे जल खून को धो डालता है, वैसे ही गृहत्यागी मुनिजनों को यथायोग्य चतुर्विध दान देने से घर-गृहस्थी के काम-काज में संचित कठिनतर पाप भी निश्चय से नष्ट हो जाते हैं।

नवधाभक्ति का फल

उच्चैर्गोत्रं प्रणतेर्भोगो दानादुपासनात्पूजा।
भक्तेः सुन्दररूपं स्तवनात्कीर्तिस्तपोनिधिषु॥115॥

अन्वयार्थ : (**तपोनिधिषु**) तप के भंडार स्वरूप मुनियों को (**प्रणतेः**) प्रणाम करने से (**उच्चैर्गोत्रं**) उच्च गोत्र (**दानात्**) आहारादि दान देने से (**भोगः**) भोग, (**उपासनात्**) उपासना करने से (**पूजा**) सम्मान, (**भक्तेः**) भक्ति करने से (**सुन्दररूपं**) सुन्दर रूप और (**स्तवनात्**) स्तुति करने से (**कीर्तिः**) सुयश (**प्राप्यते**) प्राप्त किया जाता है।

भावार्थ : मुनिराज को नमस्कार करने से उच्चगोत्र की, दान से भोगोपभोग की, उपासना करने से सम्मान की, भक्ति से सुन्दर रूप की तथा स्तुति से यशः कीर्ति प्राप्त होती है।

अल्पदान से महाफल की प्राप्ति

क्षितिगतमिव वटबीजं, पात्रगतं दानमल्पमपि काले।
फलतिच्छायाविभवं, बहुफलमिष्टं शरीरभृताम् ॥116॥

अन्वयार्थ : (**काले**) उचित समय में (**पात्रगतं**) योग्य पात्र के लिए दिया हुआ (**अल्पमपि**) थोड़ा भी (**दानं**) दान (**क्षितिगतं**) उत्तम पृथ्वी में पड़े हुए (**वटबीजमिव**) वटवृक्ष के बीज के समान (**शरीरभृताम्**) प्राणियों के (**छायाविभवं**) माहात्म्य और वैभव से युक्त, पक्ष में छाया की प्रचुरता से सहित (**बहु**) बहुत भारी (**इष्टं**) अभिलषित (**फलं**) फल को (**फलति**) देता है।

भावार्थ : जिस प्रकार उर्वर भूमि में बोया गया छोटा-सा वटबीज यथासमय सघन छाया और विपुल फल देता है, उसी प्रकार यथा अवसर सत्पात्र को दिया गया थोड़ा-सा दान भी विपुल ऐश्वर्य, सम्पत्ति और यथेष्ट भोगोपभोग का कारण बनता है।

दान के भेद

आहारौषधयोरप्युपकरणावासयोश्च दानेन।
वैयावृत्यं ब्रुवते, चतुरात्मत्वेन चतुरस्राः ॥117॥

अन्वयार्थ : (**चतुरस्राः**) चार ज्ञानधारी गणधरदेव (**आहारौषधयोः**) आहार, औषधि (**च**) और (**उपकरणा वासयोःअपि**) उपकरण तथा आवास के भी (**दानेन**) दान से (**वैयावृत्यं**) वैयावृत्य को (**चतुरात्मत्वेन**) चार प्रकार का (**ब्रुवते**) कहते हैं।

भावार्थ : आहार, औषध, उपकरण (पीछी, कमण्डलु, शास्त्रादि) तथा आवास (वसतिका आदि) इन चारों दानों के भेद से वैयावृत्य भी चार प्रकार का है।

दानों में प्रसिद्ध होने वालों के नाम

श्रीषेणवृषभसेने, कौण्डेशः सूकरश्च दृष्टान्ताः।
वैयावृत्यस्यैते, चतुर्विकल्पस्य मन्तव्याः ॥118॥

अन्वयार्थ : (**श्रीषेणवृषभसेने**) श्रीषेण, वृषभसेना (**कौण्डेशः**) कौण्डेश (**च**) और (**सूकरः**) शूकर (**एते**) ये (**चतुर्विकल्पस्य**) चार विकल्प (**वैयावृत्यस्य**) वैयावृत्य के (**दृष्टान्ताः**) दृष्टान्त (**मन्तव्याः**) मानना चाहिए।

भावार्थ : आहारदान में श्रीषेण, औषधि दान में वृषभसेना, शास्त्रदान में कौण्डेश ग्वाला तथा आवास दान में शूकर विशेषतः प्रसिद्ध हुए हैं।

अर्हत्पूजा का वैयावृत्य में अन्तर्भाव

देवाधिदेवचरणे, परिचरणं सर्वदुःखनिर्हरणम्।
कामदुहि कामदाहिनि, परिचिनुयादादृतो नित्यम् ॥119॥

अन्वयार्थ : (**आदृतः**) श्रावक को आदर से युक्त होकर (**नित्यम्**) प्रतिदिन (**कामदुहि**) मनोरथों को पूर्ण करने वाले और (**कामदाहिनि**) काम को भस्म करने वाले (**देवाधिदेवचरणे**) अरिहन्त देव के चरणों में (**सर्वदुःखनिर्हरणम्**) समस्त दुःखों को दूर करने वाली (**परिचरणम्**) पूजा (**परिचिनुयात्**) करना चाहिए ।

भावार्थ : जिनपूजा से इच्छित/वाँछित फलों की प्राप्ति और दुःखों का नाश होता है, अतः आत्महितरत श्रावक-श्राविका को श्रद्धाभक्ति पूर्वक प्रतिदिन भगवत् पूजा अवश्य करनी चाहिए। यह भगवत् पूजा भी वैयावृत्य ही है।

पूजा का माहात्म्य और उसका फल भोक्ता

अर्हच्चरणसपर्या, महानुभावं महात्मनामवदत्।
भेकः प्रमोदमत्तः, कुसुमेनैकेन राजगृहे ॥120॥

अन्वयार्थ : (**प्रमोदमत्तः**) हर्ष विभोर (**भेकः**) मेंढ़क ने (**राजगृहे**) राजगृह नगर में (**एकेन कुसुमेन**) एक पुष्प के द्वारा (**महात्मनाम्**) भव्य जीवों के आगे (**अर्हच्चरणसपर्या महानुभावं**) अरिहन्त भगवान् के चरणों की पूजा का माहात्म्य (**अवदत्**) प्रकट किया था।

भावार्थ : राजगृह नगर में आनन्द-विभोर/भक्ति में लीन एक मेंढ़क ने एक पुष्प से अरिहन्त भगवान् के चरणों की पूजा की महिमा को महान् आत्माओं के समक्ष प्रकट किया था।

वैयावृत्य शिक्षाव्रत के अतिचार

हरितपिधाननिधाने, ह्यनादरास्मरणमत्सरत्वानि।
वैयावृत्यस्यैते, व्यतिक्रमाः पञ्च कथ्यन्ते ॥121॥

अन्वयार्थ : (**हरितपिधाननिधाने**) हरित पत्र आदि से देने योग्य वस्तु को ढकना तथा हरित पत्र आदि पर देने योग्य वस्तु को रखना (**अनादरास्मरण मत्सरत्वानि**) अनादर, अस्मरण और ईर्ष्या (**एते**) ये (**पञ्च**) पाँच (**वैयावृत्यस्य**) वैयावृत्य के (**व्यतिक्रमाः**) अतिचार (**कथ्यन्ते**) कहे जाते हैं।

भावार्थ : आहारादि की वस्तु को हरे पत्ते या पुष्पों से ढकना, उसे हरे पत्तों पर रखकर देना, दान आदि में अनादर का भाव रखना, दान आदि की प्रक्रिया/विधि में भूल/त्रुटि करना। अन्य दान-दाताओं की प्रशंसा को सहन न करते हुए ईर्ष्या भाव से दान या पूजा इत्यादि करना, वैयावृत्य के पाँच अतिचार हैं।

सल्लेखनाधिकार

सल्लेखना/समाधिमरण का लक्षण

उपसर्गे दुर्भिक्षे, जरसि रुजायां च निःप्रतीकारे।
धर्माय तनुविमोचनमाहुः सल्लेखनामार्याः ॥122॥

अन्वयार्थ : (**आर्याः**) गणधरादिक देव (**निःप्रतिकारे**) प्रतिकार रहित (**उपसर्गे**) उपसर्ग (**दुर्भिक्षे**) दुष्काल (**जरसि**) बुढ़ापा (**च**) और (**रुजायाम्**) रोग होने पर (**धर्माय**) धर्म के लिए (**तनुविमोचनम्**) शरीर के छोड़ने को (**सल्लेखनाम्**) सल्लेखना (**आहुः**) कहते हैं।

भावार्थ : अटल उपसर्ग, दुर्भिक्ष, बुढ़ापा (वार्द्धक्य) तथा असाध्य रोग की विषम स्थिति में रत्नत्रयरूप धर्म परिपालन के लिए कषाय को कृश करते हुए शरीर का त्याग करना सल्लेखना है।

सल्लेखना की आवश्यकता

अन्तःक्रियाधिकरणं, तपःफलं सकलदर्शिनः स्तुवते।
तस्माद्यावद्विभवं, समाधिमरणे प्रयतितव्यम् ॥123॥

अन्वयार्थ : (**यस्मात्**) क्योंकि (**सकलदर्शिनः**) सर्वज्ञदेव (**अन्तः-**

क्रियाधिकरणम्) अन्त समय समाधिमरणस्वरूप सल्लेखना को (**तपःफलं**) तप का फल (**स्तुवते**) कहते हैं (**तस्मात्**) इसलिए (**यावद्विभवं**) यथाशक्ति (**समाधिमरणे**) समाधिमरण के विषय में (**प्रयतितव्यं**) प्रयत्न करना चाहिए।

भावार्थ : नींव की सफलता कलश है, आरम्भ की गरिमा सफल उपसंहार है, अतः जीवन के अवसान-काल को अधिक सँभालना चाहिए। तपश्चर्या का फल अन्तक्रिया पर अवलम्बित है, अतः सल्लेखना के यथाशक्ति निर्विघ्न अनुष्ठान में प्रयत्नशील होना चाहिए।

सल्लेखना-समाधिमरण की विधि

स्नेहंवैरंसङ्गंपरिग्रहं चापहायशुद्धमनाः।
स्वजनं परिजनमपि च, क्षान्त्वा क्षमयेत्प्रियैर्वचनैः॥ 124॥

अन्वयार्थ : सल्लेखनाधारी (**स्नेहं**) राग को (**वैरं**) बैर को (**सङ्गं**) ममत्वभाव को (**च**) और (**परिग्रहं**) परिग्रह को (**अपहाय**) छोड़कर (**शुद्धमनाः सन्**) स्वच्छ हृदय होता हुआ (**प्रियैःवचनैः**) मधुर वचनों से (**स्वजनं**) अपने कुटुम्बी जन तथा (**परिजनमपि**) परिकर के लोगों को (**क्षान्त्वा**) क्षमा कराकर (**क्षमयेत्**) स्वयं क्षमा करे।

भावार्थ : समाधिमरण करने वाला व्यक्ति उपकारक (इष्ट) वस्तु से राग, अनुपकारक (अनिष्ट) वस्तु से द्वेष, स्त्री-पुत्रादि से ममता का सम्बन्ध, रिश्ते और बाह्य वा आभ्यन्तर परिग्रह को छोड़कर शुद्ध मन होकर प्रिय वचनों से अपने कुटुम्बियों और नौकरों आदि से अपने दोषों की क्षमा करावे तथा आप भी उनके अपराधों को क्षमा करे।

समाधि में आलोचनापूर्वक महाव्रत धारण का उपदेश

आलोच्य सर्वमेनः, कृतकारित-मनुमतं च निर्व्याजम्।
आरोपयेन्महाव्रत- मामरणस्थायि निःशेषम्॥ 125॥

अन्वयार्थ : सल्लेखनाधारी (**कृतकारितम्**) कृत, कारित (**च**) और (**अनुमतम्**) अनुमोदित (**सर्वम्**) समस्त (**एनः**) पापों को (**निर्व्याजम्**) छल-कपटरहित या आलोचना के दोषों से रहित (**आलोच्य**) आलोचना करके (**आमरणस्थायि**) जीवनपर्यन्त रहने वाले (**निःशेषम्**) समस्त/पाँचों (**महाव्रतम्**) महाव्रतों को (**आरोपयेत्**) धारण करे।

भावार्थ : सल्लेखनाधारी मन, वचन, काय तथा कृत, कारित, अनुमोदना से किए गये समस्त दुष्कृत्यों/पापों की समीक्षा करे और जीवन पर्यन्त पाँचों महाव्रतों को उल्लासपूर्वक धारण करे।

श्रुत अमृत का पान करने की प्रेरणा

शोकं भयमवसादं, क्लेदं कालुष्यमरतिमपि हित्वा।
सत्त्वोत्साहमुदीर्य च, मनः प्रसाद्यं श्रुतैरमृतैः॥ 126॥

अन्वयार्थ : (**शोकं**) शोक को (**भयं**) डर को (**अवसादम्**) विषाद को (**कालुष्यम्**) रागद्वेष को और (**अरतिम्**) अप्रीति को (**अपि**) भी (**हित्वा**) छोड़कर (**च**) और (**सत्त्वोत्साहम्**) बल और उत्साह को (**उदीर्य**) प्रकट करके (**अमृतैः**) अमृत के समान (**श्रुतैः**) शास्त्रों से (**मनः**) मन को (**प्रसाद्यम्**) प्रसन्न करना चाहिए।

भावार्थ : सल्लेखना के लिए प्रस्थित व्यक्ति को चाहिए कि वह शोक, भय, विषाद, राग, द्वेष और अप्रीति का त्याग कर अपनी ऊर्जा तथा उत्साह को समृद्ध कर अमृतोपम सुखदायी तथा दुःख/संताप को दूर करने वाले शास्त्रों को स्वयं सुने तथा दूसरों को सुनाकर चित्त को प्रसन्न और निर्मल करे।

सल्लेखनाधारी के आहार के त्याग का क्रम

आहारं परिहाप्य क्रमशः स्निग्धं विवर्द्धयेत्पानम्।
स्निग्धं च हापयित्वा खरपानं पूरयेत्क्रमशः॥ 127॥

अन्वयार्थ : सल्लेखनाधारी को (**क्रमशः**) क्रम से (**आहारम्**) अन्न के भोजन को (**परिहाप्य**) छोड़कर (**स्निग्धं पानम्**) दूध आदि स्निग्ध पेय को (**विवर्द्धयेत्**) बढ़ाना चाहिए (**च**) पश्चात् (**स्निग्धं**) दूध आदि स्निग्ध पेय को (**हापयित्वा**) छोड़कर (**खरपानम्**) काँजी और खरपान को (**पूरयेत्**) बढ़ाना चाहिए।

भावार्थ : वह आहार को भी क्रमशः छोड़ता जाए। पहले अन्न छोड़े फिर दूध या छाँछ ले। तदनन्तर दूध-मठा भी छोड़कर काँजी और उष्ण जल ही ग्रहण करे।

सल्लेखना में शेष आहार त्याग का क्रम

खरपानहापनामपि कृत्वा कृत्वोपवासमपि शक्त्या।
पञ्चनमस्कारमनास्तनुं त्यजेत्सर्वयत्नेन॥ 128॥

अन्वयार्थ : (खरपानहापनाम् अपि) गर्म जल का भी त्याग **(कृत्वा)** करके **(शक्त्या)** शक्ति के अनुसार **(उपवासमपि)** उपवास भी **(कृत्वा)** करके **(सर्वयत्नेन)** पूर्ण तत्परता से **(पञ्च नमस्कारमनाः सन्)** पञ्चनमस्कार मंत्र में मन लगाता हुआ **(तनुं)** शरीर को **(त्यजेत्)** छोड़े।

भावार्थ : वह अन्ततः गर्म जल का भी त्याग करे तथा यथाशक्ति उपवासादि व्रतों में चित्त को निराकुल रखता हुआ, णमोकार मंत्र का जाप करे तथा शरीर को निर्विघ्न/सोल्लास छोड़ दे।

सल्लेखना के अतिचार

जीवितमरणाशंसे भयमित्रस्मृति निदाननामानः।
सल्लेखनातिचाराः पञ्च जिनेन्द्रैः समादिष्टाः॥ 129॥

अन्वयार्थ : (जीवितमरणाशंसे) जीवितशंसा, मरणाशंसा **(भयमित्र-स्मृतिनिदाननामानः)** भय, मित्रस्मृति और निदान नाम से युक्त **(पञ्च)** पाँच **(सल्लेखनातिचाराः)** सल्लेखना के अतिचार **(जिनेन्द्रैः)** जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा **(समादिष्टाः)** कहे गये हैं।

भावार्थ : जीने की अभिलाषा रखना, जल्दी मरने की इच्छा करना, भयभीत होना, मित्रों का स्मरण करना और आगामी भोगों की इच्छा रखना सल्लेखना के पाँच अतिचार हैं।

सल्लेखनाधारण का फल

निःश्रेयस-मभ्युदयं निस्तीरं दुस्तरं सुखाम्बुनिधिम्।
निःपिबति पीतधर्मा सर्वैर्दुःखःरनालीढः॥ 130॥

अन्वयार्थ : (पीतधर्मा) धर्मरूपी अमृत का पान करने वाला कोई क्षपक **(सर्वैः)** समस्त **(दुःखैः)** दुःखों से **(अनालीढः)** रहित होता हुआ **(निस्तीरम्)** अन्त रहित तथा **(सुखाम्बुनिधिम्)** सुख के समुद्र स्वरूप **(निःश्रेयसम्)** मोक्ष का **(निःपिबति)** अनुभव करता है और कोई क्षपक **(दुस्तरम्)** बहुत समय में समाप्त होने वाले **(अभ्युदयम्)** अहमिन्द्र आदि

की सुख परम्परा का अनुभव करता है।

भावार्थ : सल्लेखना का धारक धर्मामृत का पान कर सब दुःखों से रहित हो निःश्रेयसरूप/सुख-समुद्र का अनुभव करता है, जिसका कोई किनारा नहीं है तथा वह उस सुख-सिन्धु का भी अनुभव करता है, जो दुस्तर है, तिरने में कठिन है।

मोक्ष का लक्षण

जन्मजरामयमरणैः शोकैर्दुःखैर्भयैश्च परिमुक्तम्।
निर्वाणं शुद्धसुखं निःश्रेयस-मिष्यते नित्यम्॥ 131॥

अन्वयार्थ : (**जन्मजरामयमरणैः**) जन्म, वार्धक्य, रोग, मरण, (**शोकैः**) शोक, (**दुःखैः**) दुःख (**च**) और (**भयैः**) भयों से (**परिमुक्तम्**) रहित (**शुद्धसुखम्**) शुद्ध सुख से सहित (**नित्यम्**) नित्य-अविनाशी (**निर्वाणं**) निर्वाण (**निःश्रेयसम्**) निःश्रेयस (**इष्यते**) माना जाता है।

भावार्थ : जन्म, बुढ़ापा, रोग, मृत्यु, शोक, दुःख और भय से रहित तथा राग-द्वेष, काम-क्रोध आदि से मुक्त जो शुद्ध अविनाशी सुख है, वह निर्वाण है। समस्त विभाव भाव का अभाव लिए हुए अबाध, परम निराकुलतामय, स्वाधीन, सहजानन्दरूप मोक्ष है-इसे निःश्रेयस/मोक्ष कहते हैं।

मुक्त जीवों का वर्णन

विद्यादर्शनशक्तिस्वास्थ्यप्रह्लादतृप्तिशुद्धियुजः ।
निरतिशया निरवधयो निःश्रेयसमावसन्ति सुखम्॥ 132॥

अन्वयार्थ : (**विद्यादर्शनशक्ति**) केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्तवीर्य (**स्वास्थ्यप्रह्लाद**) परम उदासीनता, अनन्तसुख (**तृप्तिशुद्धियुजः**) तृप्ति और शुद्धि को प्राप्त (**निरतिशयाः**) हीनाधिकता रहित और (**निरवधयः**) अवधि से रहित जीव (**सुखं**) सुखस्वरूप (**निःश्रेयसं**) मोक्षरूप निःश्रेयस में (**आवसन्ति**) निवास करते हैं।

भावार्थ : उस मोक्ष में रहने वाले सिद्ध भगवान् अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतवीर्य और अनंतसुख रूप परम स्वास्थ्य, आनंद, तृप्ति एवं शुद्धि से संयुक्त रहते हैं, वे हीनाधिक भाव से रहित समान गुणों के धारक हैं और अनंतकाल तक सुखपूर्वक उस निःश्रेयस में निवास करते हैं।

मुक्तजीवों के गुणों में विकार का अभाव

काले कल्पशतेऽपि च गते शिवानां न विक्रिया लक्ष्या।
उत्पातोऽपि यदि स्यात् त्रिलोकसंभ्रान्तिकरणपटुः ॥ 133 ॥

अन्वयार्थ : (**कल्पशते काले**) सैंकड़ों कल्पकालों के काल के (**गते**) बीतने पर (**अपि**) भी (**यदि**) अगर (**त्रिलोकसंभ्रान्ति करणपटुः**) तीनों लोकों में खलबली पैदा करने वाला (**उत्पातः**) उपद्रव (**अपि**) भी (**स्यात्**) हो (**तथापि**) तो भी (**शिवानाम्**) सिद्धों में (**विक्रिया**) विकार (**न लक्ष्या**) दृष्टिगोचर नहीं होता।

भावार्थ : यदि तीनों लोकों में भीषण उत्पात घटित हो या सैंकड़ों कल्पकाल बीत जाएँ तो भी सिद्धों के गुण या स्वभाव में कोई विक्रिया/विकृति नहीं होती, यानी वे अनन्तकाल तक अनन्तसुख में निमग्न रहते हैं, संसार में कभी नहीं लौटते।

मुक्त जीवों की शोभा का वर्णन

निःश्रेयसमधिपन्नास्त्रैलोक्य- शिखा - मणिश्रियं दधते।
निष्किट्टिकालिकाच्छवि-चामीकर-भासुरात्मानः ॥ 134 ॥

अन्वयार्थ : (**निष्किट्टिकालिकात्**) कीट और कालिमा से रहित (**छविचामीकर**) कान्ति वाले सुवर्ण के समान (**भासुरात्मानः**) जिसका स्वरूप प्रकाशमान हो रहा है, ऐसे (**निःश्रेयसमधिपन्नाः**) मोक्ष को प्राप्त हुए सिद्ध परमेष्ठी (**त्रैलोक्य**) तीन लोक के (**शिखामणिश्रियम्**) अग्रभाग पर चूड़ामणि की शोभा को (**दधते**) धारण करते हैं।

भावार्थ : मोक्ष को प्राप्त जीव किट्ट-कालिमा से रहित दैदीप्यमान सुवर्ण के समान दीप्तिमन्त निर्मल आत्मा को धारण करने वाले होते हैं तथा तीनों लोकों के शिरो भाग पर अधिष्ठित होकर उनके चूड़ामणि की शोभा को धारण करते हैं।

सल्लेखनाधारण से इन्द्रादिक पद की प्राप्ति

पूजार्थाज्ञैश्वर्यैर्बल - परिजनकामभोगभूयिष्ठैः।
अतिशयित-भुवन-मद्भुत-मभ्युदयं फलति सद्धर्मः ॥ 135 ॥

अन्वयार्थ : (**सद्धर्मः**) सल्लेखना के द्वारा समुपार्जित समीचीन धर्म

(बलपरिजनकाम भोगभूयिष्ठैः) बल, परिवार तथा काम और भोगों से परिपूर्ण **(पूजार्थाज्ञैश्वर्यैः)** प्रतिष्ठा, धन और आज्ञा के ऐश्वर्य तथा **(अतिशयितभुवनं)** संसार को आश्चर्ययुक्त करने वाले तथा स्वयं **(अद्‌भुतं)** आश्चर्यकारी **(अभ्युदयं)** स्वर्गादि रूप अभ्युदय को **(फलति)** फलता है।

भावार्थ : सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र रूप समीचीन धर्म जिस अभ्युदय को परिणमित होता है, वह पूजा, धन तथा आज्ञा के ऐश्वर्य से संयुक्त हुआ बल, परिजन, काम तथा भोग की प्रचुरता के साथ लोक में अत्यन्त उत्कृष्ट और आश्चर्यजनक होता है।

प्रतिमाधिकार

प्रतिमा निर्देश

श्रावकपदानि देवैरेकादश देशितानि येषु खलु।
स्वगुणाः पूर्वगुणैः सह संतिष्ठन्ते क्रमविवृद्धाः ॥ 136 ॥

अन्वयार्थ : **(देवैः)** तीर्थंकर भगवान् के द्वारा **(एकादश)** ग्यारह **(श्रावकपदानि)** श्रावक की प्रतिमाएँ **(देशितानि)** कही गई हैं **(येषु)** जिनमें **(खलु)** निश्चय से **(स्वगुणाः)** अपनी-अपनी प्रतिमा सम्बन्धी गुण **(पूर्वगुणैःसह)** पूर्व प्रतिमा सम्बन्धी गुणों के साथ **(क्रमविवृद्धाः)** क्रम से वृद्धि को प्राप्त होते हुए **(संतिष्ठन्ते)** स्थित होते हैं।

भावार्थ : सर्वज्ञ भगवान् ने दर्शन, व्रत, सामायिक, प्रोषध, सचित्तत्याग, रात्रिभोजनत्याग, ब्रह्मचर्य, आरम्भत्याग, परिग्रहत्याग, अनुमतित्याग तथा उद्दिष्टत्याग श्रावकों की ग्यारह कक्षाएँ (प्रतिमाएँ) कहीं हैं। ये क्रमविवृद्ध हैं। एक के दृढ़/परिपक्व होने पर ही दूसरी महिमावान् होती है। इनका परिपालन धारावाहिक होना चाहिए अर्थात् एक में से दूसरी जन्में किन्तु निष्पन्न की पूर्ववर्ती कक्षा दृढ़तापूर्वक बनी रहे। अन्तिम प्रतिमा दसों पूर्ववर्ती प्रतिमाओं का सघन रूप होगी। अतः इनके परिपालन में श्रावक को अत्यधिक सावधानी वरतनी चाहिए।

दर्शन प्रतिमाधारी का लक्षण

सम्यग्दर्शनशुद्धः संसारशरीरभोगनिर्विण्णः।
पञ्चगुरुचरणशरणो दर्शनिकस्तत्त्वपथगृह्यः ॥ 137 ॥

अन्वयार्थ : (**सम्यग्दर्शनशुद्धः**) दोषरहित सम्यग्दर्शन का धारक (**संसारशरीरभोगनिर्विण्णः**) संसार, शरीर और भोगों से विरक्त (**पञ्चगुरु-चरणशरणः**) पञ्चपरमेष्ठी का सेवक (**तत्त्वपथगृह्यः**) अष्टमूलगुणों का धारक (**दर्शनिकः**) दार्शनिक श्रावक है।

भावार्थ : जो सम्यग्दर्शन से शुद्ध हुआ है, जो संसार, शरीर और भोगों से विरक्त है, वह पंचपरमेष्ठियों के चरणों की शरण को प्राप्त है, इस तरह जो तत्त्वपथ की ओर आकर्षित है, वह दार्शनिक श्रावक है।

व्रत प्रतिमाधारी का लक्षण

निरतिक्रमण-मणुव्रतपञ्चकमपि शीलसप्तकं चापि।
धारयते निःशल्यो योऽसौ व्रतिनां मतो व्रतिकः॥ 138॥

अन्वयार्थ : (**यः**) जो (**निःशल्यः**) शल्य रहित होता हुआ (**निरतिक्रमणं**) अतिचार रहित (**अणुव्रतपञ्चकम्**) पाँच अणुव्रतों को (**च**) और (**शीलसप्तकम्**) सात शीलव्रतों को (**धारयते**) धारण करता है (**असौ**) वह (**व्रतिनां**) गणधरदेवादिक व्रतियों के मध्य में (**व्रतिकः**) व्रतिक नाम का श्रावक (**मतः**) माना जाता है।

भावार्थ : जो श्रावक निःशल्य भाव से निरतिचारपूर्वक पाँच अणुव्रतों तथा सात शीलव्रतों का धारक है, वह व्रतिक श्रावक है। (तीन गुणव्रत-दिग्व्रत, अनर्थदण्डव्रत और भोगोपभोग परिमाणव्रत तथा चार शिक्षाव्रत-देशावकाशिक, सामायिक, प्रोषधोपवास और वैयावृत्य ये सातों शीलव्रत कहलाते हैं।)

सामायिक प्रतिमाधारी का लक्षण

चतुरावर्त्तत्रितयश्चतुःप्रणामः स्थितो यथाजातः।
सामयिको द्विनिषद्यस्त्रियोगशुद्धस्त्रिसन्ध्य-मभिवन्दी॥139॥

अन्वयार्थ : जो (**चतुरावर्त्तत्रितयः**) चारों दिशाओं में तीन-तीन आवर्त करता है, (**चतुःप्रणामः**) चार प्रणाम करता है, (**स्थितः**) कायोत्सर्ग से खड़ा होता है, (**यथाजातः**) आभ्यन्तर और बाह्य परिग्रह का त्यागी होता है (**द्विनिषद्यः**) दो बार बैठकर नमस्कार करता है, (**त्रियोगशुद्धः**) मन, वचन और काय इन तीनों योगों को शुद्ध रखता हुआ और (**त्रिसन्ध्यं**) तीनों संध्याओं में (**अभिवंदी**) वन्दना करता है, वह (**सामायिकः**) सामायिक प्रतिमाधारी है।

भावार्थ :जो चारों दिशाओं में तीन-तीन आवर्त और एक-एक प्रणाम (शिरोनति) कर आभ्यन्तर/बाह्य परिग्रह-रहित मुनि के समान खड्गासन या पद्मासन पूर्वक मन, वचन और काय को निर्मल रख सुबह, दोपहर और शाम सामायिक करता है, उसे सामायिक प्रतिमाधारी श्रावक कहते हैं।

प्रोषधोपवास प्रतिमाधारी का लक्षण

पर्वदिनेषु चतुर्ष्वपि मासे मासे स्वशक्तिमनिगुह्य।
प्रोषधनियमविधायी प्रणिधिपरः प्रोषधानशनः ॥140॥

अन्वयार्थ : जो (**मासे मासे**) प्रत्येक मास में (**चतुर्षु**) चारों (**अपि**) ही (**पर्वदिनेषु**) पर्वों में (**स्वशक्तिं**) अपनी शक्ति को (**अनिगुह्य**) नहीं छिपाकर (**प्रोषधनियमविधायी**) प्रोषध सम्बन्धी नियम को करता हुआ (**प्रणधिपरः**) एकाग्रता में तत्पर रहता है, वह (**प्रोषधानशनः**) प्रोषध प्रतिमाधारी है।

भावार्थ : जो प्रति मास दोनों अष्टमी और दोनों चतुर्दशी में अपनी शक्ति को बिना छुपाये धर्मध्यान में लीन होकर विधिपूर्वक प्रोषधोपवास करता है, वह प्रोषधोपवास पद का धारक चतुर्थ श्रावक है।

सचित्तत्याग प्रतिमाधारी का लक्षण

मूल-फल-शाक-शाखा-करीर-कन्दप्रसून-बीजानि ।
नामानि योऽत्ति सोऽयं सचित्तविरतो दया मूर्तिः ॥ 141॥

अन्वयार्थ : (**यः**) जो (**दयामूर्तिः**) दयालु (**आमानि**) अपक्व/कच्चे (**मूलफलशाक-शाखाकरीरकन्दप्रसूनबीजानि**) मूल, फल, शाक, कोंपलों, करीर/गांठ कौरों, जमीकंद, फूल और बीजों को (**न अत्ति**) नहीं खाता है (**सः**) वह (**सचित्तविरतः**) सचित्तत्याग प्रतिमाधारी है।

भावार्थ : जो दयामूर्ति श्रावक अपक्व, कच्चे, अशुष्क, सचित्त (अंकुरोत्पत्ति की संभावना से युक्त) जड़, फल, शाक, डाली, कोंपल, जमीकंद, फूल, बीज आदि नहीं खाता। यहाँ तक कि पानी भी गरम करके पीता है, वह सचित्तविरत पद का धारक श्रावक है।

रात्रिभुक्तित्याग प्रतिमाधारी का लक्षण

अन्नं पानं खाद्यं लेह्यं नाश्नाति यो विभावर्याम्।
स च रात्रिभुक्तिविरतः सत्त्वेष्वनुकम्पमानमनाः ॥142॥

अन्वयार्थः (यः) जो **(सत्त्वेषु)** प्राणियों पर **(अनुकम्पमानमनाः)** दयालु चित्त होता हुआ **(विभावर्याम्)** रात्रि में **(अन्नं)** अन्न को, **(पानं)** पीने योग्य वस्तु को, **(खाद्यं)** खाद्य वस्तु को **[च]** और **(लेह्यं)** चाटने योग्य रबड़ी आदि को **(न अश्नाति)** नहीं खाता है, **(सः)** वह **(रात्रिभुक्ति-विरतः)** रात्रिभुक्तित्याग प्रतिमाधारी श्रावक **[कथ्यते]** कहलाता है।

भावार्थ : जो श्रावक रात में अन्न, खाद्य, लेह्य और पेय आदि चारों प्रकार के आहार ग्रहण नहीं करता और प्राणिमात्र पर दयाभाव रखता है, वह रात्रिभुक्तिविरत पद का धारक श्रावक है।

ब्रह्मचर्य प्रतिमाधारी का लक्षण

मलबीजं मलयोनिं गलन्मलं पूतिगन्धि बीभत्सं।
पश्यन्नङ्गमनङ्गाद्विरमति यो ब्रह्मचारी सः ॥143॥

अन्वयार्थ : (**यः**) जो **(अङ्गं)** शरीर को **(मलबीजम्)** शुक्रशोणित रूप मल से उत्पन्न **(मलयोनिम्)** मलिनता का कारण **(गलन्मलम्)** मलमूत्रादि को झराने वाला **(पूतगन्धि)** दुर्गन्धयुक्त **[च]** और **(वीभत्सम्)** ग्लानि युक्त **(पश्यन्)** देखता हुआ **(अनङ्गात्)** कामसेवन से **(विरमति)** विरत होता है, **(सः)** वह **(ब्रह्मचारी)** ब्रह्मचर्य प्रतिमाधारी **[कथ्यते]** कहलाता है।

भावार्थ : जो श्रावक शरीर को मलबीज, मलयोनि (अपावनताओं का द्वार), मलनिर्झर, दुर्गन्धयुक्त, घृणात्मक कामसेवन से सर्वथा विरक्त है, वह ब्रह्मचर्य व्रत का धारक है।

आरम्भत्याग प्रतिमाधारी का लक्षण

सेवाकृषिवाणिज्यप्रमुखादारम्भतो व्युपारमति।
प्राणातिपातहेतोर्योऽसावारम्भविनिवृत्तः ॥144॥

अन्वयार्थ : (**यः**) जो **(प्राणातिपातहेतोः)** जीवहिंसा के कारण **(सेवाकृषिवाणिज्य-प्रमुखात्)** नौकरी, खेती, व्यापार आदिक **(आरम्भतः)**

आरम्भ के कामों से (**व्युपारमति**) विरक्त होता है, (**असौ**) वह (**आरम्भ-विनिवृत्तः**) आरम्भत्याग प्रतिमा का धारक है।

भावार्थ : जो श्रावक हिंसा की कारणभूत नौकरी, खेती, व्यापार आदि आरम्भ प्रवृत्तियों का त्याग कर देता है, वह आरम्भत्यागी श्रावक है।

परिग्रहत्याग प्रतिमाधारी का लक्षण

बाह्येषु दशसु वस्तुषु ममत्वमुत्सृज्य निर्ममत्वरतः।
स्वस्थः सन्तोषपरः परिचित्तपरिग्रहाद्विरतः ॥145॥

अन्वयार्थ : (**यः**) जो (**बाह्येषु**) बाह्य (**दशसु**) दश प्रकार (**वस्तुषु**) परिग्रहों में (**ममत्वम्**) ममता को (**उत्सृज्य**) छोड़कर (**निर्ममत्वरतः**) निर्मोही होता हुआ (**स्वस्थः**) आत्मस्वरूप में स्थित (**च**) और (**संतोषपरः**) संतोष में तत्पर है, (**सः**) वह (**परिचित्तपरिग्रहात्**) सब ओर से चित्त में स्थित परिग्रह से (**विरतः**) विरत होता है।

भावार्थ : जो बाह्य दस परिग्रहों से ममत्व छोड़ स्वात्मस्थ, परिग्रह की आकांक्षा से निवृत्त तथा संतोषधारण में तत्पर है, वह परिग्रह विरत प्रतिमा का धारक श्रावक है।

अनुमतित्याग प्रतिमाधारी का लक्षण

अनुमतिरारम्भे वा परिग्रहे ऐहिकेषु कर्मसु वा।
नास्ति खलु यस्य समधी-रनुमतिविरतः स मन्तव्यः ॥146॥

अन्वयार्थ : (**यस्य**) जिसकी (**आरम्भे**) आरम्भ के कार्यों में (**परिग्रहे**) परिग्रहों में (**वा**) और (**ऐहिकेषु**) इस लोक सम्बन्धी (**कर्मसु**) कार्यों में (**अनुमतिः**) अनुमोदना (**न**) नहीं (**अस्ति**) होती है, (**सः**) वह (**समधीः**) समान बुद्धि का धारक श्रावक (**खलु**) निश्चय करके (**अनुमतिविरतः**) अनुमतित्याग प्रतिमाधारी (**मन्तव्यः**) माना जाना चाहिए।

भावार्थ : जिसकी निश्चयपूर्वक आरम्भ में, परिग्रह में तथा लौकिक कार्यों में अनुमति नहीं होती, वह रागादि-रहित विवेक का धारक अनुमतिविरत श्रावक माना गया है।

उद्दिष्टत्याग प्रतिमाधारी का लक्षण

गृहतो मुनिवनमित्वा गुरूपकण्ठे व्रतानि परिगृह्य।
भैक्ष्याशनस्तपस्यन्नुत्कृष्टश्चेलखण्डधरः ॥147॥

अन्वयार्थ : (**गृहतो**) घर से (**मुनिवनं**) मुनियों के वन को (**इत्वा**) जाकर (**गुरूपकण्ठे**) गुरु के पास (**व्रतानि**) व्रत (**परिगृह्य**) ग्रहण करके (**भैक्ष्याशनः**) भिक्षा भोजन करता हुआ (**तपस्यन्**) तपश्चरण करता है, (**चेलखण्डधरः**) वस्त्र के एक खण्ड को धारण करता है, वह (**उत्कृष्टः**) उत्कृष्ट श्रावक या उद्दिष्टत्याग प्रतिमाधारी [**कथ्यते**] कहलाता है।

भावार्थ : जो श्रावक घर-गृहस्थी छोड़कर मुनि वन/जहाँ किसी मुनि का विहार हुआ हो या वर्षायोग हो। वहाँ जाकर तथा गुरु के निकट व्रतों को ग्रहण करके तपस्या करता है, भिक्षा द्वारा भोजन करता है तथा वस्त्रखण्ड कोपीन/छोटी चादर का धारक होता है, उसे उत्कृष्ट श्रावक कहते हैं। यह श्रावक का सर्वोच्च पद है।

श्रेष्ठ ज्ञाता का लक्षण

पाप-मरातिर्धर्मो बन्धुर्जीवस्य चेति निश्चिन्वन्।
समयं यदि जानीते श्रेयोज्ञाता ध्रुवं भवति॥148॥

अन्वयार्थ : (**पापम्**) पाप ही (**जीवस्य**) जीव का (**अरातिः**) शत्रु है (**च**) और (**धर्मः**) धर्म ही जीव का (**बंधु**) हितकारी है (**इति**) इस प्रकार (**निश्चिन्वन्**) निश्चय करता हुआ श्रावक (**यदि**) यदि (**समयम्**) आगम को (**जानीते**) जानता है (**तर्हि**) तो वह (**ध्रुवं**) निश्चय से (**श्रेयो-ज्ञाता**) श्रेष्ठ ज्ञाता अथवा कल्याण का ज्ञाता (**भवति**) होता है।

भावार्थ : पाप इस जीव का शत्रु है और धर्म मित्र (बन्धु) है, इस दृढ़ निश्चय के साथ जो स्वयं को जानता है, वही आत्मस्वरूप को भी जानता है, वही श्रेष्ठ ज्ञाता कहलाता है।

रत्नत्रय धर्म का फल

येन स्वयं वीतकलङ्कविद्यादृष्टिक्रियारत्नकरण्डभावं।
नीतस्तमायाति पतीच्छयेव, सर्वार्थसिद्धिस्त्रिषु विष्टपेषु ॥149॥

अन्वयार्थ : (**येन**) जिस भव्य ने (**स्वयं**) अपनी आत्मा को (**वीत-कलङ्कः**) निर्दोष (**विद्या**) सम्यग्ज्ञान (**दृष्टि**) सम्यग्दर्शन और (**क्रिया**) सम्यक्चारित्र रूप (**रत्नकरण्डभावं**) रत्नों का पिटारा (**नीतः**) प्राप्त कराया है (**तं**) उसे (**त्रिषु विष्टपेषु**) तीनों लोकों में (**पतीच्छयेव**) पति की इच्छा से ही मानो (**सर्वार्थसिद्धिः**) चारों पुरुषार्थों की सिद्धि (**आयाति**) प्राप्त होती है।

भावार्थ : जिस भव्य ने अपनी आत्मा को निर्दोष विद्या, निर्दोष दृष्टि तथा निर्दोष क्रिया रूप (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र) रत्नों का अधिष्ठान बना लिया है / करण्ड बना लिया है, उसे तीनों लोकों में सर्वार्थसिद्धि- पति का स्वयंवरण करने वाली स्वयंवरा कन्या की भाँति स्वयमेव प्राप्त हो जाती है।

अन्तिम मंगल

सुखयतु सुखभूमिः कामिनं कामिनीव,
सुतमिव जननी मां शुद्धशीला भुनक्तु।
कुलमिव गुणभूषा कन्यका संपुनीता-
ज्जिनपतिपदपद्मप्रेक्षिणी दृष्टिलक्ष्मीः ॥150॥

अन्वयार्थ : (**जिनपतिपदपद्मप्रेक्षिणी**) जिनेन्द्र भगवान् के चरण कमलों का दर्शन करने वाली (**दृष्टिलक्ष्मीः**) सम्यग्दर्शनरूपी लक्ष्मी (**सुखभूमिः**) सुख की भूमि होती हुई (**मां**) मुझे उस तरह (**सुखयतु**) सुखी करे, जिस तरह कि (**कामिनी**) स्त्री (**कामिनमिव**) कामी पुरुष को, (**भुनक्तु**) रक्षित करे, जिस तरह कि (**शुद्धशीला-जननी**) निर्दोष शीलव्रतों का पालन करने वाली माँ (**सुतमिव**) पुत्र को, (**सम्पुनीतात्**) पवित्र करे, जिस तरह कि (**गुणभूषा-कन्यका**) गुणों से सुशोभित कन्या (**कुलम्**) कुल को।

भावार्थ : जिस तरह कोई उत्तम नायिका अपने नायक को सुख प्रदान करती है, उसी प्रकार सम्यग्दर्शनरूपी लक्ष्मी मुझे सुख दे। जिस प्रकार कोई सुतवत्सला माँ अपने बेटे का लालन-पालन करती है, वैसे ही सप्तशीलव्रतों से विभूषित सम्यग्दृष्टिरूपी लक्ष्मी मेरी रक्षा करे और जैसे कोई गुणवती कन्या अपने कुल को समुज्ज्वल करती है, उसी प्रकार अष्टमूलगुण सम्पन्ना सम्यग्दर्शन रूपी लक्ष्मी मुझे उज्ज्वल/निर्मल करे।